CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बि. ३६५
१८८

ब्राह्मण सावधान

977

8.4

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थान

लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण, सावधान !

भा. दि. जैन संघ पुस्तकालय, चौरासी, मथुरा

हि० ३८५

लेखक

श्री सम्पूर्णानन्द

श्री गणेश प्र. वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
पुस्तक सं० ५८७

प्रकाशक

ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण, आश्विन २००१

मूल्य आठ आना

मुद्रक

विश्वनाथप्रसाद

ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हि० ३५०५

ब्राह्मण, सावधान !

'आज' में आदरणीय श्री सम्पूर्णानन्दजीकी 'ब्राह्मण सावधान' शीर्षक लेखमालाने प्रत्येक हिन्दी-पाठी हिन्दूका ध्यान आकर्षित किया होगा। उसे पढ़नेके बाद विचार तथा मननके लिए इतनी सामग्री प्रस्तुत हो जाती है कि अनायासही हमें आत्म-समीक्षा तथा अपने धर्म और उसके वर्त्तमान रूपकी समीक्षाका अवसर मिलता है।

पूज्य डाक्टर भगवानदासजीने इस लेखमालाको देखकर यह सम्मति प्रकट की थी कि इसको प्रकाशित कर चारों ओर इसका प्रचार हो। मैंने भी यही उचित समझा कि धर्म तथा दर्शनके प्रति प्रकटमें रत पर वास्तवमें उदासीन हिन्दू जातिको सावधान करनेके लिए इस लेख-मालाको प्रकाशित करा दूँ। मेरी तो इच्छा थी कि केवल हिन्दीमेंही इसका प्रचार न हो, किन्तु, अन्य भाषाओंमें भी यह अनूदित हो। आशा है अन्य भाषा-विज्ञोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा।

इस पुस्तिकाके प्रकाशनका भार लेनेका अर्थ यह नहीं है कि इसमें व्यक्त हर विचारसे मैं सहमत हूँ। जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, इसका विषय हमारे लिए आत्मसमीक्षाका एक साधन और विचार करनेका एक अवसर उपस्थित करता है। हमें बिना किसी राग-द्वेषके, शुद्ध बुद्धिसे, लेखक द्वारा उठाये प्रश्नों-पर विचार करना चाहिये।

बिहारी निवास,
कानपुर,
नवरात्रि, द्वि, २००१

रामरतन गुप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण, सावधान !

(१)

एक कथा है कि विद्या ब्राह्मणके पास आकर बोली कि मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी रक्षा करो, जो असूयावान, असंयमी या दुःशाल हो उसके हाथमें मुझे न जाने दो, तभी मैं वीर्यवती रह सकूँगी।

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय मा मा ब्रूया वीर्य्यवती तथा स्याम् ।।

इस सुन्दर वैदिक आख्यायिकाका भाव स्पष्ट है और किसी समझदारको इसपर आपत्ति न होनी चाहिये। कुपात्रके हाथमें जानेसे विद्या नष्ट हो जाती है। प्रत्येक विद्याके लिए एक ही प्रकारका पात्र नहीं होता। कुम्हारीके लिए एक प्रकारका अधिकारी चाहिये और ज्योतिषके लिए दूसरे प्रकारका, परन्तु पात्रताकी जाँच किये बिना शिक्षा देनेसे न तो योग्य कुम्हार मिल सकेंगे, न योग्य ज्योतिषी। जो लोग यह आक्षेप करते हैं कि भारतके विद्वान् अपनी विद्याको बहुत गुप्त रखते हैं वह स्यात् इस बातको भूल जाते हैं कि विद्वान्का यह कर्तव्य है कि विद्याको इतस्ततः न फेंकता फिरे।

गोप्यताकी घातक प्रवृत्ति

परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि आक्षेप नितान्त निराधार भी नहीं है। गोप्य रखते-रखते विद्याओंका लोप हो जाता है। विदेशी शासन, विशेषतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधर्म्मी शासन, का प्रभाव हो या कुछ और कारण हो, परन्तु गोप्यताकी प्रवृत्ति चरम सीमातक पहुँच गयी है। मन्त्र-तन्त्र-योग जैसी विद्याओंको जाने दीजिये, ऐसे बहुत से लोग हैं जिनको किसी रोगकी किसी अचूक औषधका कहींसे ज्ञान प्राप्त हो गया है वह स्वयं वह औषध बनाकर दूसरोंको देंगे, परन्तु बनानेकी विधि किसीको न बतलायेंगे। वह विद्या उनके साथ उठ जायगी। मेरी बुआ आँखकी एक औषध जानती थीं। मैंने देशी-विदेशी कोई औषध उस जोड़की आजतक नहीं देखी। वह यह भी जानती थीं कि मैं ऐसा लालची व्यक्ति नहीं हूँ कि उससे रुपया कमाता या कोई दूसरा दुरुपयोग करता परन्तु लाख कहने पर भी टालती गयीं, मृत्यु हो गयी पर किसीको न बता गयीं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे।

किसी एक व्यक्तिका दोष नहीं है, ऐसा वातावरण छा गया है। यह बात तो लोगोंके मनमें जम गयी है कि कुपात्रको विद्या न देनी चाहिये, परन्तु यह नहीं माना जाता कि सुपात्रको न सिखाना घोर पाप है। विद्याकी रक्षाका यह अर्थ नहीं है कि उसका लोप ही हो जाय।

इसका दुःखद उदाहरण हमको वेदोंके विषयमें मिलता है। वेदोंकी रक्षा हमारे ब्राह्मणोंने जिस प्रकार की है उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा प्रत्येक हिन्दू ही नहीं प्रत्युत विश्वसंस्कृतिका प्रत्येक प्रेमी करेगा। वेदोंका जो कुछ अंश बच रहा है उसके लिए हम ब्राह्मणोंके ऋण-भारसे कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु प्रशंसा करनेके साथ-साथ कुछ कटु सत्य भी कहना पड़ता है। वेद बच तो गया, परन्तु पुस्तकालयोंके बेठनोंमें। जो वेद इस देशके बहुसंख्यक निवासियोंका सर्वस्व था, जो उनके धर्म्मका आधार था, उनके ऐहिक जीवनका पथ-प्रदर्शक और आमुष्मिक आशाओंका प्रपोषक था, वह आज उनके बीचसे उठ गया। थोड़ेसे लोगोंने वेदका नाम सुना है, करोड़ोंने नामतक नहीं सुना; जिन्होंने नाम सुना है उनमेंसे कुछने विवाहादिके समय कुछ टूटे-फूटे मन्त्र सुन लिये हैं। वेदकी पोथी कैसी होती है, इसका किसको पता है? वेदमें क्या है, इसे कौन जानता है? ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी, द्वैतवादी, अद्वैतवादी, शैव, शाक्त, वैष्णव, आर्य्यसमाजी सभीके लिए वेद मान्य है, परन्तु किसी संस्कृत-पाठशाला या हिन्दू स्कूलमें जाइये, वहाँ मङ्गलाचरणमें रामचन्द्रकी स्तुति पढ़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जायगी, कहीं कृष्णकी, कहीं महादेवकी, कहीं गणेशकी, कहीं हनुमानकी। जो सब सम्प्रदायोंको मिलानेवाला, सबका स्रोत, श्रोता-वक्ता उभयपक्ष-सम्मत है उसका कहीं पता नहीं है। आग्रह करने पर यदि कोई संस्कृत पण्डित दो चार मन्त्र पढ़नेको प्रस्तुत भी हुआ तो वर्ण, स्वर, मात्राका ऐसा व्यभिचार कर देगा कि मन्त्र वेचारोंकी हत्या हो जायगी। ऐसे अवसरोंपर वृत्रवधकी कथाकी याद आ जाती है। ऐसे मन्त्र पढ़ने और सुननेवालेका विनाश करते हैं, इनका न पढ़ा जाना ही अच्छा है।

हि • ३०५

साधन साध्य हो गया

यदि हमको यह विश्वास होता कि इस प्रकार सर्वसाधारणके सामने वेदको न लाकर अकेलेमें ब्राह्मणवर्ग उसका स्वाध्याय करता है और इस प्रकार उसकी रक्षामें तत्पर है तब भी सन्तोष होता। परन्तु हम जानते हैं कि ऐसा नहीं हो रहा है। 'सबके सामने मत पढ़ो'—'सबके सामने मत पढ़ो,' कहते-कहते केवल 'मत पढ़ो,—'मत पढ़ो' रह गया है। वेदार्थ एक ऐसी निधि थी जिसके पासतक पहुँचनेके लिए छः बड़ी कुञ्जियाँ और दो छोटी कुञ्जियाँ लगती थीं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष बड़ी, और इतिहास और पुराण छोटी कुञ्जियाँ हैं। जो पण्डित हैं वह प्रायः छोटी कुञ्जियोंको हाथ नहीं लगाते और बड़ी कुञ्जियोंमेंसे प्रायः तीन, अर्थात् शिक्षा, कल्प और निरुक्तकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते। शेष तीनमें व्याकरण मुख्य-तम है। इसकी पढ़ाई बड़ी धूमधामसे होती है, ज्योतिष और छन्दकी ओर भी कम ध्यान नहीं दिया जाता। परन्तु इन शास्त्रोंका वेदोंसे विसंयोग हो गया है। इनको वेदकी कुञ्जी न मानकर, ताला-कुञ्जीकी युगल मूर्ति माना जाता है। जो साधन था वह साध्य हो गया है। व्याकरणका ज्ञान वेद समझनेके लिए नहीं, केवल व्याकरणकी पण्डिताईके लिए प्राप्त किया जाता है। हमारी पेटीमें हीरा है, इसको सबके सामने न खोलना चाहिये, इस विचारसे पेटी ऐसी बन्द कर दी गयी कि हीरेकी परख ही जाती रही। सैकड़ों बरसोंसे पेटी खुली ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं; वेदार्थ समझने-समझानेकी परम्परा प्रायः लुप्त हो गयी। संहिताओंकी शाखाकी शाखा लुप्त हो गयीं पर किसीको पता न चला।

पाठ और अर्थमें अन्तर

मैं जानता हूँ कि अब भी कर्मकाण्डके लिए थोड़ा-सा वेद-पाठ होता है पर इसका नाम स्वाध्याय नहीं है। इससे वेदार्थ नहीं, केवल थोड़ेसे मन्त्रोंके शब्दों-की रक्षा हो जाती है। इससे अच्छा स्वाध्याय तो पौराणिक कर्मकाण्डकी पोथियों और अनन्त चतुर्दशी व्रत-कथा जैसी पौराणिक कहानियोंका होता है क्योंकि अमरकोष और लघुकौमुदी पढ़ा हुआ छात्र भी उनका बहुत कुछ अर्थ स्वयं लगा लेता है। वेदार्थ और वेदपाठमें कितना अन्तर है उसके लिए केवल यह एक उदाहरण पर्याप्त होना चाहिये कि आज घर-घर नवग्रहकी पूजामें शनिके लिए 'शन्नोदेवीरभिष्टय, आपो भवन्तु पीतये, शंयोरभिस्रवन्तुनः' मन्त्र पढ़ा जाता है। इसमें कहीं शनिका पता नहीं है। शंनोका अर्थ है 'हमारा कल्याण' परन्तु 'शनि' से कुछ कुछ स्वन मिलता है, इसलिए इसे शनिका मन्त्र मान लिया गया है। लगभग इतना ही गड़बड़ गणेशजीके सम्बन्धमें है। उनकी गणना वैदिक देवोंमें नहीं है, परन्तु वह सर्वत्र पुजते हैं और उनके लिए 'गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे' मन्त्र पढ़ा जाता है। इस मन्त्रमें गणपति शब्द आया तो है पर वस्तुतः इसका प्रयोग गणेशजीके लिए नहीं हुआ है। यह मन्त्र यजुर्वेदके अश्वमेधाध्यायसे लिया गया है और वहाँ इसके द्वारा यजमान की पत्नी मेध होनेवाले घोड़ेको सम्बोधन करती है। यदि सचमुच वेदोंका अध्ययन होता तो शब्दसाम्यके बलपर यह घोड़ेवाला मन्त्र गणेशजीके माथे न मढ़ा जाता। अर्थ-ज्ञानविहीन पाठके सम्बन्धमें निरुक्तमें यास्कने यह अवतरण दिया है--

स्थाणुरयंभारवाहः किलाभूदधीत्यवेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूत पाप्मा।
यद्गृहीतमविज्ञातं, निगदेनैव शब्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो, न तज्ज्वलति कर्हिचित्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[वह मूर्ख केवल बोझ ढोनेवाला है जो वेदको पढ़कर अर्थ नहीं जानता। जो अर्थज्ञ होता है वह सकल भद्रका यहाँ भोग करता है और ज्ञान से पाप दूर करके स्वर्ग जाता है। जो पढ़ा हुआ बिना अर्थ समझे योंही रट कर पाठ करता है वह अग्निहीन स्थलमें पड़े शुष्क काष्ठके समान प्रज्वलित नहीं हो सकता।]

वैदिक स्वाध्याय उठ जानेका यहाँतक परिणाम पहुँच गया है कि आजका हिन्दू यह नहीं जानता कि वह किसकी उपासना करता है। एक 'कोटि' शब्द-ने अनर्थ मचा रखा है। साधारणतः यही समझा जाने लगा है कि देवगणकी संख्या तैंतीस करोड़ है। न कोई इनके नाम पूछता है, न पूछने पर कोई बता सकता है। जिस जगहसे वह भूल पकड़ी जा सकती है वहाँ पहुँच होती ही नहीं। जो थोड़ेसे विद्वान् वैदिक साहित्यके ज्ञाता हैं वह अधर्मको रोकना और अज्ञानको दूर करना अपना धर्म नहीं समझते। इन्द्र, मित्रावरुण, अश्विद्वय, वायु आदि वैदिक देवोंको कौन पूछता है, अब तो स्वाहा पढ़कर भैरव और हनुमान् और शीतलाको आहुति दी जाती है; यही भुक्तिमुक्ति-भण्डारके स्वामी हैं।

वेदोंकी जगह नयी पुस्तकें

वेद तो गये पर उनकी जगह भी तो कुछ आना चाहिये। प्राकृत भाषाओंसे काम नहीं चल सकता। यदि उनका प्रयोग होने लगे तो फिर ब्राह्मणोंसे लोग काम कम लें, स्वयं पौरोहित्य कर लें। फिर गम्भीरतामें भी कमी आ जाय। अभीतक धारणा यही है कि पूजा-पाठकी बात संस्कृतमें होती है, इसलिए धर्म्मोपदेशका माध्यम वैदिकभाषा नहीं तो लौकिक संस्कृत तो होनी ही चाहिये। इसको पढ़ना और समझना सुकर होता है, छः महीनेका परिश्रम पर्याप्त है। इस प्रकार वेदोंकी जगह नयी पुस्तकोंका निर्माण होने लगा और थोड़ाबहुत अबतक होता जा रहा है। यदि यह नयी पुस्तकें वेदार्थको समझानेके लिए बनतीं या इनमें वह बातें विस्तारसे कही गयी होतीं जो वेदोंमें संक्षेपसे निर्दिष्ट हैं या इनमें किसी नयी और स्वतन्त्र दार्शनिक विचारधाराका अवलम्बन किया गया होता तो हम इनका स्वागत करते। स्मृतियोंमें यही बात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो की गयी है। पर यह नयी पुस्तकें तो वेदकी गद्दीपर बैठ गयीं। विष्णु-सहस्रनामका पारायण किया जाता है, किसी वेदकी संहिताका नहीं; नृसिंह या भैरव या हनुमान्का 'इष्ट' बहुत लोगोंको होता है, गायत्रीका 'इष्ट' कोई सिद्ध नहीं करता; महिम्न-स्तोत्रका पाठ सिर हिला-हिलाकर किया और कराया जाता है, सामवेद सुननेमें उससे अच्छा लगता है यह किसीको याद नहीं है।

(२)

वेदोंसे दूर जा पड़नेसे धर्म्माधर्मकी कसौटी ही बदल गयी या यों कहिये कि अब कोई कसौटी रह गयी ही नहीं। निरुक्तमें आया है—

पुरस्तान्मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु
देवानब्रुवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति
तेभ्य एतंतर्कमृषिम्प्रायच्छन्।

[जब ऋषिगण पृथ्वीसे उठ गये तो मनुष्योंने देवोंसे पूछा कि अब हमारा ऋषि कौन होगा। देवोंने उनके लिए तर्कको ऋषि (बनाकर) भेजा।] तात्पर्य्य यह निकला कि जब आजकल धर्म्मका प्रवचन करनेवाले साक्षात् ऋषि नहीं हैं तो तर्कसे काम लेना चाहिये। कर्तव्याकर्तव्यके सम्बन्धमें सब पक्षोंकी अन्तिम परख तर्कसे अपनी बुद्धिमें ही की जा सकती है। यह बात उचित है, क्योंकि अमुक शास्त्र धर्म्मका समर्थन करता है, ऐसा निर्णय भी तब होता है जब हम पहिले तर्क द्वारा उस शास्त्रकी प्रामाणिकताका निश्चय कर लेते हैं।

नयी पुस्तकोंकी तर्कहीनता

परन्तु पिछले कई सौ वर्षोंमें वेदोंकी जगह जिस वाङ्मयने ले ली है वह तर्कसे कोसों दूर भागता है। वेद इस लोक तथा परलोकके सम्बन्धमें जो कुछ उपदेश देता है उसके लिए भी श्रद्धा चाहिये, परन्तु पीछेकी पोथियोंका तो एक मात्र सहारा श्रद्धा—अन्ध श्रद्धा, है; आँखवाली श्रद्धा तो वहाँ ठहर ही नहीं सकती। अतिशयोक्तिकी चरम सीमासे भी आगे बढ़कर बात की जाती है। इस समय मेरे सामने काशीस्थ राजकीय प्रधान संस्कृत पाठशालाके प्रधानाध्यापक श्री पण्डित हृषीकेशोपाध्याय ज्यौतिपाचार्य द्वारा प्रवर्तित सं० १९९९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का पञ्चाङ्ग है। पञ्चाङ्गोंकी पद्धतिके अनुसार इसमें भी पर्वादिके लिए धर्म-शास्त्रके अनुसार अनुकूल व्रतादि बतलाये गये हैं, प्रासङ्गिक वाक्य धर्मशास्त्रोंसे उद्धृत कर दिये गये हैं। इसमें भाद्रपद कृष्णपक्ष वाले पन्नेपर 'उपवासे दन्त-धावननिषेधः' शीर्षक देकर यह श्लोक उद्धृत किया गया है—

उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम्।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम्॥

[उपवास तथा श्राद्धके दिन दन्तधावन (दतुवन) नहीं करना चाहिये। (ऐसे अवसरपर) दाँतोंका लकड़ीसे संयोग सात पीढ़ियों तकको भस्म कर देता है।]

जिसने इस श्लोकको रचा वह भी पण्डित रहा होगा, उद्धृत करनेवालेके पण्डित्यमें शङ्का की जा सकती ही नहीं। यह धर्मकी शिक्षा है! अब इसको कौन समझदार अपनी बुद्धिमें उतार सकता है? एक ओर वेदोंकी मीमांसा करनेवाले महामुनि जैमिनि यह कहते हैं कि विश्वमें सुख, दुःख, इहलोक, परलोक केवल वेदोक्त धर्माधर्मके पालन-अपालनपर निर्भर करता है, दूसरी ओर यह बतलाया जाता है कि रामनवमीके दिन जो मनुष्य—'उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते'—व्रत नहीं रहता वह कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। एक रामनवमीको व्रत न रहना सारे सत्कर्मोंपर पानी फेर देता है। वेद कहता है—

तद्विप्रासो विपन्यवो, जागृवांसः समिन्धते, विष्णोर्यत्परमं पदम्।

[तपस्वी पापहीन योगी उसको प्राप्त होते हैं जो विष्णुका परम पद है]

परन्तु नया उपदेश यह है कि

यः करोति तृतीयायां, विष्णोश्चन्दनपूजनम्।
वैशाखस्य सितेपक्षे, स याति हरिमन्दिरम्॥

(जो वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको विष्णुका चन्दन-पूजन करता है, वह विष्णुलोकको जाता है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागपञ्चमीको नागकी पूजा करनेका यह फल है कि

'आसप्तमात्कुले तस्य न भयं सर्पतो भवेत्'

—सात पीढ़ियोंतक सर्पका भय नहीं रह जाता !

धर्मके नामपर अधर्म

ऐसे ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। मैं जानता हूँ कि इनमेंसे किसी एक बातपर पूरी श्रद्धा रखनेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी नहीं मिलेगी परन्तु इनका संयुक्त परिणाम वही हुआ है जो इस निबन्धमें निर्दिष्ट है। लोगोंकी बुद्धिको दुर्बल और भ्रष्ट करनेमें अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखा गया है। वेदकी पोथी ही नहीं गयी वह पोथी जिन गुणोंका प्रतीक थी वह गुण भी चले गये। धर्मके लिए सत्य, दृढ़ता, तप, श्रमकी आवश्यकता नहीं रह गयी, सब काम सस्ता हो गया। सस्तेका अर्थ यह नहीं है कि पैसा कम लगने लगा वरन् यह कि ऐसे ऐसे लटके निकल आये जिनसे बातकी बातमें स्वर्ग और विष्णु आदि लोक प्राप्त हो जाते हैं, सब पापोंका क्षय हो जाता है, अपने दैनिक जीवनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, झूठ-कपट छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। एक उदाहरण लीजिये। आज उत्तर भारत और महाराष्ट्रमें सत्यनारायण व्रत और कथा सर्वत्र लोकप्रिय है। मुझे मद्रासका ठीक पता नहीं है। लोग एक दिन व्रत रहते हैं, सत्यनारायणकी पूजा करते हैं और व्रतके माहात्म्यकी चार कहानियाँ सुनते हैं। इन्हींको कथा कहते हैं। मुझे व्रत और पूजाके विषय-में कुछ नहीं कहना है, उनका उपदेश नारदजीको साक्षात् विष्णुने कलिकालके जीवोंके हितार्थ दिया है। माहात्म्यकी कहानियाँ इस बातका प्रमाण हैं कि इस पूजासे अभीष्टकी सद्यः सिद्धि होती है। कहानियोंमें तीन छोटी हैं, साधु बनियाकी कहानी लम्बी है। परन्तु अब कहानियोंकी ओर ध्यान दीजिये। किसी कहानीमें कहीं एक जगह भी भगवान् सत्यनारायण किसीसे यह नहीं कहते कि तू सत्य बोला कर, नहीं तो तेरा व्रतोपवास मैं स्वीकार न करूँगा। साधु बनिया अपने जामाताके साथ जहाजपर माल ले जाता है और अपार धन कमा-कर लौटता है। व्यासजीने कहा है कि :

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाच्छित्वा परमर्माणि, नाकृत्वा कर्म दुष्करम् ।
ना हत्वा मत्स्यघातीव, प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥

—बिना दूसरेके मर्मका छेदन किये, बिना दुष्कर कर्म किये, बिना मछुआहेकी भाँति अपने हितके लिए सैकड़ोंके प्राण लिये, बहुत धन नहीं कमाया जा सकता ।

व्यासजी विष्णुके अंशावतार थे, इसलिए उनकी कही हुई बात श्री सत्य-नारायण देवको भी ज्ञात ही रही होगी पर वह बनियेसे यह एक बार भी नहीं पूछते कि तुमने इतना रुपया कैसे कमाया, न उसकी भर्त्सना करते हैं । उनसे बस इतनेसे काम है कि मुझको जो वचन दिया गया था वह पूरा हो, मेरा भाग ठीक तिथिपर मिल जाना चाहिये । इस कथाके प्रचारसे जो अधर्म फैला है वह हमारे सामने है । सत्यनारायणकी पूजासे वही काम लिया जाता है जो सरकारी अहलकारोंको रिश्वत देनेसे निकाला जाता है; तुम जो चाहो करो, हम आँख बन्द कर लेंगे, परन्तु हमारा हिस्सा देते जाओ । पुलिस रिश्वत लेकर इस लोकमें मामला दबा देती है, सत्यनारायण भगवान परलोकमें सब अप-राधोंको क्षमा करा देते हैं और इस लोकमें ऊपरसे पुरस्कार दिलवाते हैं । साधु बनियाने न जाने किस किस उपायसे रुपया कमाया था परन्तु पूजा करके उसने भगवानका मुँह बन्द कर दिया था; आज भी लोग झूठा मुकदमा जीतकर उतने ही चावसे सबन्धु-बान्धव व्रत करते हैं और कथा सुनते हैं । यह ध्यान देनेकी बात है कि सत्यनारायणकी पूजाके साथ हरिश्चन्द्रकी कथा नहीं सुनी जाती ।*

---

*इस विषयमें मेरे पास विद्वद्वर पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्रका पत्र आया है । उससे इस कथाके ऊपर अच्छा प्रकाश पड़ता है । वह लिखते हैं कि ईसवी ग्यारहवीं शताब्दीमें बङ्गाल में सत्यपीर नामके किसी व्यक्तिने नया मत चलाया । उसने संस्कृत की कई पोथियाँ लिखवायीं और बड़ी कूटनीतिसे काम लेता था । उसके मतके प्रसारको रोकनेके लिए ब्राह्मणोंने यह उपाय किया कि उसकी पोथियोंको ज्योंका त्यों लेकर आदि-अन्तमें कुछ जोड़कर पौराणिक रूप दे दिया । इस प्रकार उनपरसे नवीनताकी छाप हट गयी और लोग नये सम्प्रदायमें जानेसे बचा लिये गये । सत्यनारायण-कथा भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनताका अन्धविश्वास

जबतक वेदोंका चलन था तबतक कड़ाई थी, आधार वेद था, उसका एक-एक मन्त्र गिना हुआ था, एक मन्त्रके अर्थका सामञ्जस्य दूसरे मन्त्रोंसे करना पड़ता था, मीमांसाके विशेष नियम थे। अब यह सब बन्धन ढीले हो गये। किसी देव-देवी, ऋषि-मुनिके नामसे कोई पुस्तक गढ़ दी जाय तो कोई पकड़ नहीं रह जाती। अपने अपनेको सभी प्रामाणिक हैं क्योंकि अपने उपासकोंकी दृष्टिमें कोई देव-देवी किसी दूसरेसे छोटा नहीं है। शिक्षा जितनी ही नरम होगी, उसमें सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, त्यागका जितना ही कम काम होगा, उतनी ही उसकी मान्यता बढ़ेगी, क्योंकि यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि कलिकालमें लोग कठिन उपासना नहीं कर सकते।

बस दो वस्तुएँ चाहियें—संस्कृत भाषा और अनुष्टुप् छन्द। जैसा कि मैं पहिले कह आया हूँ, लघुकौमुदी और अमरकोषसे काम चलाने भरको संस्कृत आ जाती है। अनुष्टुप्के बराबर सीधा छन्द नहीं होता। आठ-आठ अक्षरके चार पद, मात्राका विचार करना नही होता। लोगोंपर श्लोककी गरिमा पहिलेसे बैठी हुई है। बस इस आड़में चाहे जो कह जाइये, उसके पक्षमें चाहे जैसा

सत्यपीरकी देन है। उसमें विष्णु-नारद संवाद ब्राह्मणोंका जोड़ा हुआ है और 'सत्य फकीर' की जगह दण्डी स्वामी रख दिये गये हैं। नवीन रचना होनेसे ही 'स्कन्द-पुराणे रेवाखण्डे' लिखे रहनेपर भी अभी यह स्कन्दपुराणके किसी संस्करणमें स्थान नहीं पा सकी है। 'रम्भाफलम्,' 'अभावे शालिचूर्णं वा,' 'गत्वा सिन्धुसमीपे,' 'रत्न-सारपुरेरम्ये' आदि वाक्य उसके वङ्गीय उद्भवका अन्तःसाक्ष्य दे रहे हैं। मैं इन बातोंका ज्ञान करानेके लिए पण्डित विश्वनाथप्रसादजीका बहुत ऋणी हूँ। बहुत-से पाठकोंको भी यह बात रोचक प्रतीत होंगी। मेरी आशा है कि अब विद्वज्जन इस कथासे हिन्दू समाजको छुट्टी दिलानेका प्रयत्न करेंगे। मिश्रजीके शब्दोंमें 'उससे कहीं उत्तम और प्रभावयुक्त कथाएँ पुराणोंमें हैं। कर्म्मकी ओर लगानेवाली कथाएँ हैं पर देशकी पराधीनता, दरिद्रता, और अज्ञान आदिके फलस्वरूप इसकी छानबीन करके कोई उनके प्रसारका प्रयत्न ही नहीं करता।' —लेखक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तर्क दीजिये या कुछ न दीजिये। यदि आप कह दें कि मेरा कहा वेद-स्मृति-पुराणसम्मत है तो आपको अपनी पुष्टिमें कोई प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। वह श्लोक सबने ही सुना होगा जिसमें कहा गया है कि पञ्चकन्या अर्थात् अहल्या, मन्दोदरी, तारा द्रौपदी और कुन्तीके नित्यस्मरणसे सब पातकोंका नाश होता है। किसीने दिल्लगीमें हो इसकी रचनाकी होगी पर अब यह धर्म्म का अङ्ग हो गया। यह कोई नहीं पूछता कि इसका आधार क्या है। यह प्रश्न नहीं उठता कि यदि पाँच स्त्रियोंके नित्यस्मरणसे ही सब पापोंका शमन होता है तो सती, सावित्री, सीता, लोपामुद्रा और अरुन्धतीका नाम क्यों न लिया जाय ?

अनुष्टुप्‌का जादू ऐसा छाया है कि उसको तोड़ना कठिन हो जाता है। श्लोक ऐसा कहता है, फिर क्या चाहिये ? प्रत्येक श्लोक शास्त्र है और शास्त्र अनुल्लङ्घनीय है। मेरे एक विद्वान् मित्र अपने लड़कपनके दो खिलवाड़ बता रहे थे। उनके यहाँ कोई पण्डितजी आये थे, सायंकालके समय लघुशङ्का करने जा रहे थे। इन्होंने तड़से यह श्लोकार्ध बनाकर पढ़ दिया—

लघुशङ्का न कर्तव्या, सायंप्रातर्जनाधिप।

[हे राजन्, प्रातःकाल और सायंकाल लघुशङ्का नहीं करनी चाहिये।] बस, सुनते ही पण्डितजी रुक गये। ऐसे ही, एक दूसरे पण्डितजी कहीं नङ्गे पाँव जानेवाले थे। इन्होंने उनसे कहा, यह आप क्या कर रहे हैं, क्या आप इस वाक्यको नहीं जानते—

पादत्राणविहीनानाम्, का गतिः स्याज्जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्युनुशुश्रुम॥

[हे जनार्दन, जो लोग बिना जूतेके रहते हैं उनकी क्या गति होती है? मैंने ऐसा सुना है कि नरकमें निश्चित रूपसे रहना पड़ता है।]

यह पण्डितजी भी द्विविधामें पड़ गये। ऐसा तमाशा जो चाहे देख सकता है। ऐसी श्रद्धा बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाली है। 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' ध्रुव सत्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथाकथित धर्मशास्त्रसे एक उदाहरण देता हूँ। हिन्दू धर्मके महापीठ हिन्दू विश्वविद्यालयसे जो विश्वपञ्चाङ्ग निकलता है उसमें काक-मैथुन देख लेने या कौएसे छू जाने या आधी रातमें कौएके बोल उठने या घरपर आ बैठनेपर जो प्रायश्चित करना होता है उसका लम्बा विधान दिया है। अब दो ही बातें हैं। या तो कोई इन बातोंपर विश्वास नहीं करता—ऐसी दशामें इनको धर्मशास्त्रके भीतर रखना धर्मकी हँसी कराना है; या लोग विश्वास करते हैं—ऐसी दशामें मनुष्यकी बुद्धि पतित होती है और मनुष्य नामका अपमान होता है। जहाँ धर्मबुद्धिकी जगह ऐसी बेसिरपैरकी बात होने लगी वहाँ संस्कृति और आत्मनिर्भरताकी हत्या होना अवश्यम्भावी है और फिर जब प्रतिक्रिया होगी तो अविश्वासकी आँधी इन असच्छास्त्रोंके साथ साथ वेदादि सच्छास्त्रोंको भी उड़ा ले जायगी।

द्विधा कर्त्तव्य

जो लोग सचमुच धर्ममें अभिरुचि रखते हों उनका द्विधा कर्तव्य है—एक तो इस प्रकारकी मध्ययुगीन ऊटपटाँग रचनाओं और उनके आधारपर खड़े कर्म और उपासनाके आडम्बरका निर्दय विरोध और दूसरे प्राचीन वेदादिके पुनः पठन-पाठन और उनकी तर्कमूलक मीमांसाका प्रचार। इस कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं शैव, वैष्णव आदि साम्प्रदायिक उपासना-शैलियोंका विरोध कर रहा हूँ या फिरसे अश्वमेधकी प्रथा चलाना चाहता हूँ। मेरा तात्पर्य यह है कि जो धर्म और संस्कृतिका मूल है उसको सामने लाना चाहिये, आज जो आदेशों और उपदेशोंका जङ्गल लग गया है उसको काट देना चाहिये उपदेश आज्ञा और उपासनाका एक निर्विवाद और सर्वमान्य स्रोत होना चाहिये और देशकालके अनुकूल तर्कके सहारे धर्मकी व्यवस्था होनी चाहिये। इस कर्तव्यका बोझ सबसे अधिक उन लोगोंपर है जो सच्छास्त्रोंके संरक्षक हैं इस समय ऐसा हो रहा है कि वह बाहर पहरा दे रहे हैं और भीतरसे निधि लुटती चली जा रही है। धर्मके नामपर लोगोंमें अकर्मण्यता, आलस्य दम्भका जो विष फैल रहा है उसे यदि तत्काल रोका न गया तो धर्मका नाम ही मिट जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३)

मैंने पहले सङ्केत किया है कि साधारण हिन्दू यह नहीं जानता कि उसके उपास्य कौन और कितने हैं। विदेशी और विधर्मी इसपर हँसते हैं। किसीके हँसनेसे कोई वस्तु निन्दास्पद नहीं हो जाती परन्तु समझदार मनुष्यका यह कर्तव्य है कि अपने कामोंकी आप जाँच करता रहे और यदि कोई काम ठीक न जँचे तो चाहे लोग उसकी प्रशंसा करें तब भी त्याग दे। पूजा-पाठके सम्बन्धमें जो अन्धाधुन्ध और अराजकता मची हुई है उसको न तो बुद्धिसे आश्रय मिलता है न प्राचीन शास्त्र-परम्परासे। हमारे धर्म्मका मूल जब वेद है तो फिर उसीमेंसे सारी उपासना निकलनी चाहिये। जो अच्छे लोग अपने पुण्योंके प्रतापसे स्वर्लोकको प्राप्त करते हैं वह वहाँके सुखोंका अनुभव करते हैं, अधिकारोंका नहीं। कुछ पुण्यात्मा तपस्वी स्वर्लोकसे भी ऊपर जाते हैं। इन सबको कर्म्मदेव कहते हैं। इनकी पूजा नहीं की जाती। पूजा होती है आजान देवोंकी, उन लोगोंकी जो अपने तपके प्रभावसे इन्द्र, वायु, अग्नि आदि पदोंपर पहुँचते हैं और एक निश्चित कालतक तत्तत्पदपर रहकर यथाधिकार जगत्‌का शासन करते हैं अर्थात् लोगोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं। इनकी संख्या स्वयं वेदोंमें निर्दिष्ट है और वहीं इनके नाम भी मिलते हैं। अतः इस संख्यामें वृद्धि होनेका अर्थ यह हुआ कि वेद धर्म्मके विषयमें प्रमाणं नहीं है अर्थात् ईश्वर-वाक्य नहीं है। पर यह तो कोई हिन्दू अपने मुँहसे कह नहीं सकता, अतः कोई हिन्दू वेदोक्त संख्यामें नये देवोंको जोड़ नहीं सकता।

उपास्य देवोंका बाहुल्य

इस बातको ध्यानमें रखते हुए हमारे आजकलके उपास्योंकी सूची देखिये। सबसे पहले गणेशजी आते हैं। इनके बिना किसी पूजा, किसी शुभ कृत्यका अनुष्ठान हो ही नहीं सकता। यह कहाँसे आये ? वैदिक देव-सूचीमें इनका नाम नहीं है, यद्यपि 'सुर अनादि जिय जानि' कहकर तुलसीदासजीने इनके पिता-माताके विवाहमें पहिले इनकी पूजा करवायी है। प्राचीन कालमें विनायक नामके एक प्रकारके विघ्नकारी सूक्ष्म-देह-धर होते थे जिनके उपशमके लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार उपचार किये जाते थे जैसे आज प्रेत-बाधाके लिए किये जाते हैं। गृह्य-सूत्र-कालतक यही बात थी। आजकल भी जब किसी घरमें कोई बहुत रुग्ण होता है या कोई ऐसा ही उपद्रव होता है तो विनायक-शान्तिके लिए यज्ञ किया जाता है। विनायक चार थे। गणेशजी उनके गणधर, नेता, थे; आज भी 'नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्' कहा जाता है। शुभ कृत्योंके आरम्भमें विनायकोंकी, (विशेषतः उनके नेता की) शान्ति की जाती थी, ताकि वह लोग काममें विघ्न न डालें। होते-होते उनकी पदवृद्धि ऐसी हुई कि विघ्नकारीसे कल्याणकारी मान लिये गये और हिन्दू-समाजको एक नया उपास्य मिल गया। त्रेताके अन्तमें रामचन्द्रजीने लङ्कापर चढ़ाई की। इस युद्धमें हनुमानसे बड़ी सहायता मिली। तत्कालीन आर्य ही नहीं उनके एतत्कालीन वंशज भी हनुमानजीके प्रति अपनी कृतज्ञताका प्रदर्शन करते, यह सर्वथा उचित था परन्तु इतनेसे ही काम न बना। सारा सतयुग और प्रायः सारा त्रेता बीत जानेके बाद देव-सूचीमें एक नाम और बढ़ा—हनुमानजी पुजने लगे। इसी प्रकार भैरव पुजते हैं, शीतला पुजती हैं, सर्प पुजते हैं। इनमेंसे किसीकी पूजापर आक्षेप करना सनातनधर्मके विरुद्ध विद्रोह करना माना जाता है।

तैंतीस कोटिसे तैंतीस करोड़ होनेसे यह अनर्थ हुआ है। इन सबके नाम कोई जानता तो है नहीं, कोई भी नया नाम जोड़ा जा सकता है। यह कौन कह सकता है कि तैंतीस करोड़में यह नहीं हैं? अशिक्षितोंमें भी ऐसे लोग हैं जो तैंतीस कोटिका अर्थ गिनतीसे तैंतीस करोड़ नहीं वरन 'बहुतसे' करते हैं पर इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। 'बहुतसे' भी अनिश्चित संख्या है। यदि शीतला रोगकी अधिष्ठात्री उपास्य है तो हैजा और प्लेगकी पूजा न करनी चाहिये, यह कैसे सिद्ध हुआ? यदि हनुमानजीकी पूजा हो सकती है तो हमारे गाँवके रहने वाले खदेरू बाबाकी क्यों नहीं हो सकती, जो अपने जीवन-कालमें झाड़-फूँकसे गाँववालोंका बड़ा उपकार करते थे? यह कैसे जाना जाय कि उस सूचीमें हसन-हुसैन या गाजीमियाँका नाम नहीं है? और फिर आग़ा खाँ क्या बुरे हैं? ताजियापर शर्बत चढ़ानेवाला या बीबी फातमानको पूजनेवाला ऐसा कौन-सा बुरा काम करता है जो हिन्दूको न करना चाहिये? मैंने हिन्दू स्त्रियोंको,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनमें ब्राह्मणी और क्षत्राणी भी थीं शुक्रवारके दिन बच्चोंको गोदमें लिये मसजिदके बाहर खड़ी देखा है ताकि नमाज़ पढ़कर निकलनेवाले उन बच्चोंपर फूँक छोड़ते जायँ। यही माताएँ उतनी ही श्रद्धासे मसान बाबाकी फूँक भी लेती हैं, भैरवनाथजीका भभूत (विभूति) भी लेती हैं। उनके लिए सब बराबर हैं। राम-रहीमको एक मानना अच्छा है, 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' का सिद्धान्त अक्षरशः सत्य है, पर यह सब जो कुछ होता है वेदान्तके आधारपर नहीं होता। वेदान्तका मूल ज्ञान है, इस धार्मिक अराजकताका मूल घोर अज्ञान, घनीभूत मोह, है।

एक कहानी है कि एक हिन्दू और एक मुसलमान नावपर जा रहे थे कि आँधी उठी और नाव डूबने लगी। हिन्दूने घबराकर कालीजीको पुकारा। वह सहायताको आगे बढ़ी ही थीं कि उसने बाबा भैरवनाथजीका नाम लिया। कालीजी रुक गयीं और भैरवनाथजीने त्रिशूल सँभाला। इतनेमें उसने बजरङ्गबलीकी दुहाई दी। मुसलमान यह तमाशा देख रहा था। उसने कहा 'भाई साहब, जबतक यह पञ्चायत पूरी होगी तबतक यह नाव डूब जायगी। अब आप रुक जाइये।' यह कहकर उसने अल्लाहको याद किया। उन्होंने आकर नावको किनारे लगाया। यह है तो कहानी, पर इसमें कामकी बात है। हिन्दू अपने उपास्योंकी पञ्चायतमें मारा जाता है।

चरित्रपर प्रभाव

पूजापाठ धर्मका मुख्य अंश नहीं है। वह वैयक्तिक वस्तु है। यह उपास्योंका बाहुल्य और उपास्योंका बढ़ता जङ्गल अशास्त्रीय है, अवैदिक है, निन्दास्पद है, हास्यास्पद है। यह सब ठीक है, फिर भी स्यात् क्षम्य हो सकता था परन्तु इन बातोंका प्रभाव धर्मके उस महत्त्वपूर्ण अंशपर पड़ता है और पड़ा है जिसको चरित्र कहते हैं। धर्म वह तत्त्व है जो धारण करता है, जो ऐहिक और आमु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्मिक उन्नतिका साधन है। धर्मका बहुत बड़ा अङ्ग धृति है। धृतिका अर्थ है धैर्य, दृढ़ता, आत्मनिर्भरता, स्वावलम्बन। पूजापाठकी इस विडम्बनाने हिन्दू-की धृतिको नष्ट कर दिया है। वह भक्त नहीं, वरन् भीरु बन गया है। उपासनाकी तीन सीढ़ियाँ होती हैं। पहिली सीढ़ीपर उपासकका अपने उपास्यदेवके प्रति तस्याहम् (मैं उसका हूँ) ऐसा भाव होता है। दूसरी सीढ़ीपर तवाहम् (मैं तेरा हूँ) ऐसा भाव होता है और तीसरी सीढ़ीपर त्वमेवाहम् (मैं तू ही हूँ—जो तू है वह मैं हूँ) ऐसा भाव होता है। हिन्दू सामान्यतः यही नहीं जान पाता कि कस्याहम् (मैं किसका हूँ)। वह एक दर्बारसे दूसरे दर्बारमें मारा-मारा फिरता है। कहींपर एकतानतापूर्ण श्रद्धा प्राप्त नहीं होती। पर एक बात हो जाती है। मैं निकम्मा हूँ, अपनेसे कुछ नहीं कर सकता, यह भाव पक्का हो जाता है। उस मनुष्यकी दशा बड़ी भयावह होती है जो पानीमें डूबता हो और यह समझ रहा हो कि मैं तैरकर पार नहीं जा सकता पर बीसों लकड़ियोंको देखकर कभी एकको पकड़ता हो कभी उसको छोड़कर दूसरीको। धृतिकी कमीसे हिन्दू बड़ी जल्दी कातर हो उठता है। उसका धर्म उसको बतलाता है कि आत्मा अमर है और मरनेवालेका फिर जन्म होता है परन्तु किसीकी मृत्युपर जितना कुहराम हिन्दुओंके घर मचता है उतना दूसरोंके यहाँ कभी नहीं देखा जाता।

बचपनसे हिन्दूको सिर झुकानेका अभ्यास डाला जाता है। उसको पता ही नहीं है कि उससे वन्दना पानेके अधिकारी कितने हैं; हर डीह, हर पत्थर, हर पेड़में एक देव या देवीका अड्डा हो सकता है। जहाँ कहीं बन पड़े सिर झुका दो, पानी डाल दो, चावल फेंक दो। इससे मनुष्ययोनि और मनुष्यके उत्तमाङ्गकी मर्यादा नष्ट हो गयी। हिन्दूको सर झुकानेमें लज्जा नहीं रह गयी। जो प्रत्येक पेड़-पत्थरके सामने घुटने टेक सकता है वह दूसरे मनुष्योंको साष्टाङ्ग दण्डवत् करनेमें क्यों सङ्कोच करने लगा ? हिन्दू छोटे-से छोटे जमीनदार, छोटे से छोटे अहलकार, स्वधर्म्मी, विधर्म्मी, स्वदेशी, विदेशी, जो कोई हो उसको हाथ जोड़ सकता है। हमारे यहाँ ब्राह्मणोंको, जो धर्मके रक्षक हैं, विदेशी और विधर्म्मी शासकोंके प्रति 'धर्मावतार' जैसे शब्दोंका प्रयोग करते देखा जाता है;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं नहीं कह सकता कि कहीं अन्यत्र भी ऐसी पतित और घातयित्री बात देखी-सुनी जा सकती है।

यह स्मरण रहे कि हिन्दू ही भारतमें बहुसंख्यक समुदाय हैं। जिस देशके बहुसंख्यक समुदायका चरित्र ऐसा गिरा होगा उसकी क्या गति होगी ? उसके सुख, समृद्धि और स्वातन्त्र्यकी रक्षा कैसे होगी ?

उत्तरदायी कौन ?

मैंने पहिले भी ब्राह्मणोंके कर्तव्यका उल्लेख किया था। फिर भी करता हूँ। कोई विद्वान् ब्राह्मण यह कहकर दोषसे नहीं बच सकता कि मैं और मेरा कुटुम्ब इन बुराइयोंसे अलग है। आप भले ही अलग हों पर आप दूसरोंको उठानेके लिए क्या कर रहे हैं ? आप इस समाजके जन्मना नेता हैं, इसका दिया खाते हैं, इसीके बनाये बड़े और पूज्य हैं। इस ऋणका प्रत्यर्पण आप किस प्रकार कर रहे हैं ? आपने कब कब्र, मस्जिद, ताजिया, डीह, मसान, भूत, शीतला और दूसरे अवैदिक देवी-देवियोंके विरुद्ध मुँह खोला ? कब आपने दूसरे ब्राह्मणोंको मना किया कि इन जगहोंमें पूजा-पाठ मत कराओ, इस प्रकारके उपासकोंका पौरोहित्य छोड़ दो, उनका पैसा मत छुओ ? जिस धर्म्मकी आप दुहाई देते हैं उसके लिए आपने कौन सा कष्ट, कौन सा त्याग किया ? धर्म्मकी सेवा व्यवस्थापक सभाओंकी सदस्यता प्राप्त करके नहीं होती।

बौद्ध और जैन धर्म्म, ईसाई धर्म्म, इस्लाम और सिक्ख धर्म्मके इतिहास बहुत पुराने नहीं हैं। वह बतलाते हैं कि धर्म्मकी रक्षा तपसे होती है। यदि आपको स्वयं अपने निगमागमपर विश्वास और श्रद्धा है तो फिर उनके विरुद्ध जो कुछ देख पड़े उसपर निर्मम प्रहार कीजिये, चाहे इसमें धनकी हानि हो, चाहे स्वजनवियोग हो, चाहे मृत्यु हो। यह धर्म बड़ा प्राचीन है, इसके सिद्धान्त बड़े ही श्रेयस्कर हैं, परन्तु इसकी जड़ कट रही है और उसको इसके अनुयायी ही काट रहे हैं। आपके पूर्वजोंने वेदको लुप्त होनेसे बचा लिया; पर वेदकी पोथी पुस्तकालयोंमें रखी रह जाने मात्रसे सनातनधर्म्म नहीं बच सकता; धर्म्मका लक्षण, बुद्धिपूर्वक सक्रियता है। आप लोगोंको सद्धर्म्मकी अनवरत शिक्षा दें, सत्कर्मके लिए निरन्तर प्रेरणा करते रहें, असद्धर्म्म और असत्कर्म्ममें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्त होनेवालोंकी भर्त्सना करें, उनके असदाचरणसे सक्रिय असहयोग करें। ऐसा आपने अबतक नहीं किया है। धर्म्मके नामपर जो यह सब अधर्म्म हो रहा है इसके दायी आप हैं। यह आपका पाप है। समाजका नेतृत्व हँसी-खेल नहीं है। नेतृत्व केवल अभिवादन और दक्षिणा लेनेके लिए नहीं होता। नेता अनुयायियोंके दुष्कर्मोंके लिए लोक और धर्मके सामने उत्तरदायी होता है। यदि आप शीघ्र न सँभले तो यह पापकी आग आपको, हिन्दू-समाजको और इस देशको भस्म कर देगी। करोड़ों मनुष्योंके बुद्धिबल और चरित्रका गिरना आप खड़े-खड़े देख रहे हैं, स्वयं उनको पतित बना रहे हैं, वेद और धर्मका नाम लेकर उनको अधर्मके गर्तमें ढकेल रहे हैं। यह ईश्वर, वेद, धर्म और मनुष्य जातिके साथ, अपने जगद्वन्द्य पूर्वजोंके साथ, विश्वासघात है। इसका मार्जन नहीं हो सकता।

(४)

एक अङ्ग्रेजी कहावत है, 'हमें हमारे मित्रोंसे बचाओ।' जिन लोगोंके ऊपर धर्मकी रक्षाका भार डाल दिया गया है या यों कहिये कि जो उसके स्वयं-नियुक्त रक्षक हैं उनके हाथों देवगणकी जो दुर्गति हुई है उसे देखकर प्रत्येक सहृदय यही पूछ बैठेगा कि इनसे वह लोग क्या बुरे हैं जो इस धर्मके प्रत्यक्ष विरोधी हैं। मैं गँवारोंकी, अशिक्षितोंकी, बात नहीं करता क्योंकि इन बेचारोंका कोई दोष नहीं। इनको जैसी शिक्षा दी गयी वैसी इन्होंने ग्रहण की। यह तो उपदेष्टाओंको सोचना था कि हम साधारण कोमल-बुद्धि अधिकारियोंके सामने क्या शिक्षा रखें। कवियोंके विषयमें भी कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। 'निरङ्कुशा हि कवयः' प्रसिद्ध उक्ति है। कुछ दूरतक कविके लिए सामान्य बन्धन ढीले भी किये जा सकते हैं परन्तु कविको स्वयं संयमसे काम लेना चाहिये। जिसने अपनी कलमको बेलगाम घोड़ीकी भाँति छोड़ दिया वह अपनी प्रतिभाका दुष्प्रयोग करता है। उसकी रचनासे शिवेतरक्षतिके स्थानसे शिवेतरवृद्धि होती है। ऐसी वाणी कल्याणी नहीं हो सकती। कविको सदैव दायित्वका ध्यान रखना चाहिये। तुलसीदासजीकी यह पंक्ति—

जगत मातु पितु सम्भु भवानी।
तेहिं सिंगार न कहहुँ बखानी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन पदलालित्यमयी सहस्र-सहस्र पंक्तियोंसे कितने ऊँचे स्तरपर है जिनमें हरगौरी या राधाकृष्णकी कल्पित श्रृङ्गारलीलाका वर्णन किया गया है ! जयदेवकी रचनामें ताल, स्वर, प्रसाद, ओज, माधुर्य, लय सब कुछ हो परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि बङ्गालकी हिन्दूकालीन स्वाधीनताके प्रदीपको, जो लक्ष्मणसेनके कायर हाथोंमें योंही अस्थिर हो रहा था, भक्तराज जयदेवके अशिव गीतने चिरकालके लिए बुझा दिया। जिस प्रकार इन कवियोंने लक्ष्मीसे वृद्ध पुरुषकी नवोढ़ा भार्याके रूपमें छोटे-छोटे जमींदारों और सेठ साहूकारोंके यहाँ अभिसार कराया है उसे देखकर इन्हें जितना धिक्कारा जाय थोड़ा है।

देवोंकी छीछालेदर

पर मैं इन्हें यहीं छोड़ता हूँ। इनसे कहीं अधिक दोष उन लोगोंका है जिन्होंने ऐसे ग्रन्थोंका निर्माण किया है जिनमें धर्मका नाम लेकर देवोंकी निन्दा की गयी है और प्रायः उतने ही दोषी वह लोग हैं जो इन ग्रन्थोंके आधारपर धर्मोपदेश करने बैठते हैं। वेदोंके पीछे पुराणोंमें ही मुख्यशः देवचर्चा है और पुराणोंमें ही देवोंकी छीछालेदर की गयी है। वेदार्थ समझनेके लिए पुराणोंकी आवश्यकता है परन्तु पुराणोंको समझनेके लिए बड़े धैर्य्यकी आवश्यकता है। पढ़ते-पढ़ते क्रोध आने लगता है। कैसी विभीषिका रची गयी है ! और तमाशा यह है कि यह सारा काण्ड ऐसे लोगोंने किया है जो अपनी रचनाके द्वारा धर्मबुद्धिको दृढ़ करना चाहते थे। 'लिखत सुधाकर लिखि गा राहू'का ऐसी रचनाएँ ज्वलन्त उदाहरण हैं।

पुराणोंका आधार वेद है परन्तु पौराणिक देवसूचीको श्रौत देवसूचीसे मिलानेसे दोनोंमें बड़ा भेद देख पड़ता है। वैदिक देवोंमेंसे प्रायः सबका पद गिर गया है। जिस मर्य्यादाकी रक्षा हिरण्यकशिपु, वृत्र, महिषके प्रबल आक्रमणोंको झेलकर की गयी थी वह इन पुराणकर्ताओंकी लेखनीके आगे धूलमें मिल गयी। अग्नि, यम, कुबेर, वरुण, बृहस्पति, अश्विद्वय, वायु, सूर्य्य छोटे-छोटे विभागोंके अधिष्ठाता रह गये। अर्य्यमा, पूषा, नासत्य सुन्दर नाम थे; अब लुप्त हो गये। सरस्वती रह गयीं पर वाक् उठ गयी। इन देवोंके लिए क्या रोया जाय,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबसे बड़ी दुर्गति तो इन्द्रकी की गयी है। देवराज वह अब भी कहलाते हैं परन्तु उनका स्थान वही है जो किसी बड़े साम्राज्यमें किसी माण्डलिक राजाका होता है। अन्य देवगण उनके सामन्त मात्र हैं। वेदोंमें कथा आयी है कि विष्णु रुद्र, सूर्य सबने मिलकर इन्द्रको अपना राजा चुना। वह इन सबसे पूज्य और बलवान हैं। शतपथ ब्राह्मणके शब्दोंमें—

इन्द्रः सर्वा देवताः, इन्द्रश्रेष्ठा देवाः।

[इन्द्र सर्वदेव स्वरूप हैं, इन्द्र देवोंमें श्रेष्ठ हैं।] विष्णुको वेदोंमें कई जगह इन्द्रसखा कहा है। उनका एक नाम है इन्द्रावरज—इन्द्रके पीछे जन्मा हुआ, इन्द्रका छोटा भाई। परन्तु आजकल इन्द्र इतने छोटे हो गये कि उनको गरुड़ और हनुमानके बराबर भी आसन मिलना कठिन है।

यह तो देवोंकी सापेक्ष महत्ताकी बात हुई। उनका नैतिक चित्र और भी गया-बीता है। बात-बातमें झूठ बोलते हैं, एक दूसरेकी पत्नीके पीछे दौड़ते रहते हैं, गुरुतल्पगमन जैसे घोर पापसे भी विरत नहीं होते, किसीकी बढ़ती देख नहीं सकते, किसीको तप करते देखकर काँप उठते हैं, जो लोग धर्म या तपके मार्गपर आरूढ़ होते हैं उनको पथभ्रष्ट करनेके लिए नीचसे नीच उपायोंसे काम लेते हैं, पदे-पदे ऋषि-मुनियोंसे दुत्कारे जाते हैं। ऐसी कथाओंको पढ़कर या पुराण-वाचकोंके मुँहसे सुनकर किसीको भी देवोंके प्रति श्रद्धा नहीं हो सकती। उनसे तो हम साधारण मनुष्य ही अच्छे हैं। जो लोग इतने पतित हैं उनके सामने सिर क्या झुकाया जाय, उनके नामके साथ स्वाहा जोड़कर क्या उनको हव्य दिया जाय, क्या उनसे कुछ माँगा जाय!

वैदिक वाङ्मयमें देवगण

परन्तु वैदिक वाङ्मयमें, जिसको पुराणोंका आदि-स्रोत बतलाया जाता है देवोंके प्रति ऐसी बातें नहीं मिलतीं। जैसा मैं पहले कह आया हूँ, वास्तवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् उपास्य देव वह हैं जिन्होंने अपने प्रबल तप और पुण्यसे देवपद प्राप्त किया है। इनके लिए देवत्व भोग नहीं वरन् कर्मकी भूमि है। इनका स्थान स्वर्लोक माना जाता है। इनको आजानदेव कहते हैं। इन्द्र, अग्नि, विष्णु, रुद्र आदि आजानदेव हैं। यह अपने पदकालमें ब्रह्माण्डका सञ्चालन करते हैं, ऋत और सत्यके, विश्वविधायक अटल नियमोंके, अनुसार जगत्को चलाते हैं, सुख-समृद्धिका वितरण करते हैं, लोगोंको यथाशक्य धर्ममार्गसे च्युत होनेसे रोकते हैं, भूलते-भटकते मनुष्योंकी गुरुजनकी भाँति भर्त्सना भी करते हैं, बड़े भाईकी भाँति विद्या और धर्मके कठिन पथपर हाथ पकड़कर ले चलते हैं। देवोंको देवयोनिमें होनेसे ही निष्प्रयास एक प्रकारकी समाधि प्राप्त रहती है, परन्तु उस समाधिजन्य प्रज्ञा और विभूतिका उपयोग वह लोग भवसमुद्रमें पड़े हुए अल्पवीर्य, अल्पमेध प्राणियोंके हितार्थ करते रहते हैं। इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं है, भूतदया ही कारण है। यह ठीक है कि मनुष्यको चाहिये कि हव्य और स्तुतिसे देवोंका सन्तर्पण करे पर यह इसलिए नहीं कि इसके बिना देवगणका कोई काम रुक जाता है प्रत्युत इसलिए कि कर्तव्यका पालन न करना अधर्म है और अधर्मका परिणाम दुःख है। जो श्रुति साक्षात् धर्ममूर्ति है उसमें आदिसे अन्त तक जिन देवोंकी महिमा गायी गयी है उनको दुराचारी कहनेसे बढ़कर अधर्म और क्या होगा ? जहाँ-जहाँ वैदिक यज्ञादिका अनुष्ठान आता है वहाँ पहले सत्यका सङ्कल्प करना होता है क्योंकि शतपथके शब्दोंमें 'अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति'—झूठ बोलनेसे पुरुष अपवित्र हो जाता है। अनुष्ठानके आरम्भमें अग्निसे प्रार्थना की जाती है कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, इसके सम्पादनकी मुझमें शक्ति दीजिये, 'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि'—यह मैं झूठसे सत्यकी ओर आता हूँ। और यही देवगण जिनको उद्दिष्ट करके यज्ञ किये जाते हैं हमारे सामने मनुष्योंसे भी गये-बीते अनृतात्माओंके रूपमें रखे जाते हैं।

इन्द्रादिका तपस्वियोंके प्रति ईर्ष्यालु होना भी विचित्र बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी बुद्धि साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत ही कम है। जहाँ कोई अधिकारी कुछ वर्षोंके लिए नियुक्त होता है वहाँ हम देखते हैं कि वह यह जानता है कि इस अवधि भर मैं प्रायः अटल हूँ। किसीको आगे बढ़ते देखकर यह भाव तो उसके मनमें उठ सकता है कि यह मेरा उत्तराधि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारी होनेके लिए यत्नशील है परन्तु अपने पदके छिन जानेकी उसे कोई आशङ्का नहीं होती। भावी उत्तराधिकारीके प्रति उसके हृदयमें मुदिताका भाव उदय हो या कुढ़नका, पर वह उससे लड़ाई नहीं मोल लेता। इन्द्र-पद विशेष तपसे प्राप्त होता है। इन्द्रकी आयु सौ दिव्य वर्ष बतलायी गयी है अर्थात् एक व्यक्ति सौ दिव्य वर्ष तक इस पदपर रहता है। फिर इन्द्र किसीसे ईर्ष्या क्यों करेंगे? उतना तो वह जानते ही होंगे जितना कि पुराणोंकी कृपासे हम जानते हैं। जब सौ वर्ष तक उनका स्थान अटल है और इसके पीछे उनको उस जगहसे हटना ही है तब फिर वह किसीको तपोभ्रष्ट क्यों करना चाहेंगे? कर्मसिद्धान्तपर विश्वास रखनेवाला कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि इन्द्रकी आयु बीचमें कट नहीं सकती। यदि ऐसा हो तो कृतहानि हो जायगी अर्थात् उनकी तपश्चर्याका फल अभुक्त रह जायगा। परन्तु हमारे पुराणाचार्य हमको सिखलाते हैं कि देवगण न केवल दुराचारी, इन्द्रियलोलुप और झूठे हैं वरन् परले सिरेके मूर्ख भी हैं।

यह दुर्गति क्यों?

पुराणोंमें देवगणकी यह दुर्गति इसलिए की गयी है कि विष्णु या महादेवको उनसे ऊँचा दिखलाया जाय। अधिदैवदृष्टिसे तो विष्णु और रुद्रको श्रुतिने इन्द्रके पीछे रखा है परन्तु अध्यात्म दृष्टिसे चाहे जिस नाम और जिस विग्रहको ऊँचा स्थान देनेका अधिकार उपासकको है। उस एक परमतत्त्वके सभी नाम हैं—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' जो चाहे उसे विष्णु कहे, जो चाहे इन्द्र कहे, जो चाहे रुद्र कहे। परन्तु किसीकी बड़ाई करनेके लिए भी योग्यता चाहिये। दुर्बुद्धि मनुष्य अपने मित्रोंका ही गला काट देता है। विष्णु और शिवकी महिमा दिखलानेके लिए इन्द्रादिको नीच बनाना आवश्यक न था। उनकी महत्तासे हरिहरकी महत्ता और चमक जाती। निकम्मोंसे बड़े होनेमें कोई विशेपता नहीं है और फिर बड़े भी न रह पाये। उनके मूर्ख भक्त उनको भी ले डूबे। एक स्त्रीको देखकर शिव, जो कामको भस्म करनेकी क्षमता रखते थे, पागल हो गये और उनकी सारी योगविभूति उनको यह न बतला पायी कि वह विष्णु-रचित मायामयी पुतली है। ऋषि-पत्नियोंके सामने वह निर्लज्जोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाँति नङ्गे होकर नाचते रहे। विष्णुके भक्तोंने उनसे पतिप्राणा निर्दोष वृन्दाके सतीत्वको नष्ट कराके ही चैन पाया। जब और कुछ न बन पड़ा तो असुरोंको हरानेके लिए विष्णुने बुद्ध रूपसे उस वेदसम्मत कर्मकाण्डकी निन्दाका बीड़ा उठाया जिसका कभी स्वयं उन्होंने प्रतिपादन किया था। वैदिक यज्ञ-यागमें तो, कमसे कम अनुष्ठानकालमें, सत्यका सङ्कल्प लेना होता था, इस नये युगमें वह सब व्यर्थका प्रयास हो गया। भला हम कलिकालके जीव कोई सङ्कल्प निबाह सकते हैं? स्वयं भगवान्‌ने बालिको धोखेसे मारा और जरासन्ध, दुर्योधन तथा मुचकुन्दको धोखेसे मरवाया। फिर हम पामर जीव सत्यपर किस बिरतेपर अटक सकते हैं? खाओ पियो, नाचो गाओ और एकाध टुकड़ा भगवान्‌के नामपर भी फेंकते जाओ। मैं मानता हूँ कि सद्वक्तासे कथा सुनकर उत्तम अधिकारी उसमेंसे सदुपदेश ग्रहण कर सकता है परन्तु उत्तम अधिकारी बहुत थोड़े हैं और सद्वक्ता उनसे भी थोड़े हैं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि साधारण श्रोता-वक्ता भी उसको विकृत न कर सकें और उससे प्रमाद, अकर्मण्यता, दम्भ और अश्रद्धा न ग्रहण कर सकें।

पुराणोंकी कथा-पद्धतिका परिणाम

वेदोंमें भी कहीं-कहीं देवोंकी निन्दा आयी है, पर वहाँ देवपद लक्षित है, किसी देव विशेषका व्यक्तित्व नहीं। उन स्थलोंमें यही प्रसङ्ग है कि यद्यपि देवगण मनुष्यकी अपेक्षासे अमर हैं फिर भी मोक्षकी तुलनामें देवत्व अकिञ्चन है और ब्रह्मानन्दके सामने देवत्व-सुख नगण्य है। पुण्यके क्षीण होने पर प्रायः सभी देवोंको फिरसे मर्त्यलोकमें आना पड़ता है। यहाँ ब्रह्मज्ञानकी गरिमा अभीष्ट है, देवपदकी गर्हा तो प्रसङ्गवशात् कर दी गयी है। पुराणोंकी कथा-पद्धति हमारे मनमें देवोंके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न तो कर देती है परन्तु मुमुक्षा उत्पन्न नहीं करती। उलटे यह भाव उत्पन्न करती है कि जब बड़े-बड़ोंमें भी यह सब दोष भरे पड़े हैं, तो हम क्या बुरे हैं। कोई माया-मोह, मान-बड़ाईके पार नहीं जा सकता, इस बातके लिए परिश्रम करना व्यर्थ है। जहाँ तक हो सके सुखसे जीवन बिताया जाय और बस थोड़ा-बहुत पूजा-पाठ भी करते रहना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही चाहिये। सर्कार बुरी सही, उसको भी कुछ कर तो देना ही पड़ता है। इससे कुछ थोड़ा-बहुत लाभ ही होता है और उसके रुष्ट होनेसे कुछ हानि भी हो सकती है।

आज जनसाधारणकी मनोवृत्ति कुछ ऐसी ही हो गयी है। व्यापक अश्रद्धा, अविश्वास, प्रमाद, अकर्म्मण्यता और दम्भने धर्ममें घर कर लिया है। देवता-तत्त्व क्या है, विश्वचक्रप्रवर्तक शक्तियोंके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है, हम उनके किस प्रकार सहायक हो सकते हैं और किस प्रकार अवरोधक हो रहे हैं, इन बातोंकी कहीं शिक्षा नहीं है। हमारी दुर्बलताओं और दुराकांक्षाओंको शक्तिमती बनाकर देवलोकमें बिठा दिया गया है। पुराने पूज्य नामोंकी आड़में हम अपनी ही ईर्ष्या, झूठ, कपट, परदारापहरणप्रवृत्ति, उद्देश्यसिद्धिके लिए चाहे जैसे साधनोंसे काम लेना, दम्भ आदिको देखते हैं। पुराण हमको बतलाते हैं कि देवोंका यही स्वरूप है। हमको ऐसी शिक्षा देकर भी यह आक्षेप किया जाता है कि आजकल कलिकाल है। किमाश्चर्य्यमतः परम् !

इस कहनेका यह तात्पर्य्य नहीं है कि मैं पुराणोंके पढ़ने-पढ़ानेका विरोधी हूँ। पुराणोंमें हमारी अपार सांस्कृतिक निधि सुरक्षित है, उनमें धर्म्म और मोक्ष सम्बन्धी अमूल्य उपदेश-रत्नोंका भण्डार भरा पड़ा है परन्तु इसके साथ ही बहुत सा कूड़ा-कचरा भी मिल गया है। यह मानना कि सारे पुराण व्यास जीके लिखे या कहे हैं व्यासजीका उपहास करना है। उनको ऐसी भोंडी बातों-के लिए जो श्रुति, तर्क और इतिहासके विरुद्ध हैं दायी बनाना अन्याय है। पुराणोंका अन्तःसाक्ष्य बतलाता है कि वह न तो एक समय बने हैं न एक व्यक्ति उनका रचयिता था। उनमें जो रत्न हैं उनका संग्रह करना चाहिये। परन्तु कूड़ेका बहिष्कार भी करना चाहिये। श्रौत उपासना-पद्धतिको फिरसे आगे बढ़ाना चाहिये। मनुष्यका स्वभाव पानीकी भाँति निम्नपथगामी होता है। वह अन्य कामोंकी भाँति उपासनामें भी ऐसा ही मार्ग ढूँढ़ता है जिसमें परिश्रम कम करना हो और अपने रागद्वेष, झूठ और कपटसे भरे जीवनमें व्यतिक्रम न पड़े। यह ठीक पता नहीं है कि उस पार क्या है, इस लिये चार पैसा उन अज्ञात शक्तियों के नाम पर भी लगा देता है। यह भी एक प्रकारका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोजगार है, जिसमें यदि लाभ न हुआ तो विशेष घाटा भी नहीं है। उसको ऐसे आचरणका अवसर न मिलना चाहिये।

उपासना-पद्धति कैसी हो ?

उपासना-पद्धति तपोमूलक होनी चाहिये, उसमें पदे-पदे इस बातका संस्मरण होना चाहिये कि दैवी शक्तियाँ उत्कोच या चाटुकारिता से नहीं रिझायी जा सकतीं। न उन्हें मीठी-मीठी स्तुतियोंके सुननेकी अभिलाषा है, न किसीके माला-फूल मिठाई-पकवानकी भूख। न गोशालामें चन्दा देना उनको बहका सकता है, न ब्राह्मणको दक्षिणा देना उनकी आँखमें धूल झोंक सकता है। वहाँ तो सचाई, ईमानदारी, इन्द्रिय-दमन, भूतदयाकी खोज है। जो मनुष्य इन धर्मोंका आचरण करता है वह देवोंका सखा बन जाता है क्योंकि उससे उनको जगत्के सञ्चालनमें सहायता मिलती है। सबकी शक्ति बराबर नहीं है पर कोई भी इतना दुर्बल नहीं है कि वह इस मार्गपर थोड़ा-बहुत न चल सके। जो इधर बढ़नेका सङ्कल्प करता है इन्द्रादि देवगण उसका आगे बढ़कर स्वागत करते हैं, जिस प्रकार बड़ा भाई छोटे भाईको चलना सिखाता है उस प्रकार उसकी सहायता करते हैं। देवगण धर्मके रक्षक हैं। जो धर्मका सेवन करता है, उसके अर्थ और काम, योग और क्षेमका वह स्वयं निर्वाह करते हैं। देवोंका यह स्वरूप जो उनका वास्तविक स्वरूप है, जनताके सामने आना चाहिये। प्राचीन आर्योंके सामने यही स्वरूप था। इस स्वरूपके प्रति श्रद्धा होती है। पुराणोंका जो अंश इसके विरुद्ध देवोंके प्रति अनादरका भाव उत्पन्न करता है उसको प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये। इस प्रक्षेपमें मुझे यह बात नहीं खटकती कि यह व्यासजीकी कृति नहीं है। बालक भी अच्छी बात कहे तो वह मान्य हो सकती है पर जो बात मनुष्यकी दुर्बलताओंको धर्मका आलम्बन दे दे और उसको अपने वर्तमान रूपके ऊपर उठनेके लिये बराबर चाबुक न लगाती रहे, जो उसके दम्भका पर्दा निरन्तर न फाड़ती रहे, वह धार्मिक शिक्षा कहलानेके योग्य नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५)

पुनरुक्ति अच्छी चीज नहीं होती परन्तु कभी-कभी उससे काम लेना ही पड़ता है। ब्राह्मणोंके प्रति कड़वी भाषाका प्रयोग करना मुझे अच्छा नहीं लगता परन्तु कटुताके डरसे धर्मका परित्याग नहीं किया जा सकता। जो अपने कर्त्तव्यको भूल गया हो उसे उसका स्मरण दिलाना धर्म है। इसीलिए मैं बारम्वार उसी रागको अलापता हूँ। मुझे वैदिक धर्मके प्रति जो श्रद्धा है और ब्राह्मणके ऊँचे पदके लिए जो स्नेह और आदर है वह मेरी धृष्टताका मार्जन कर देगा।

हमसे कहा जाता है कि आजकल कलियुग है। जहाँतक कि यह कालका एक विभाग मात्र है वहाँतक हमें कुछ नहीं कहना है। मुहूर्त, घड़ी, पक्ष, वर्ष, कल्प, परार्द्ध सभी काल-विभाग हैं और लम्बे कालोंका निर्देश करनेमें युग जैसे बड़े मापदण्डोंसे सुविधा होती है। कई विद्वानों का मत है कि कलियुगका अब अन्त हो गया है और सतयुग लग गया है। मुझे भी कुछ ऐसा ही ठीक जँचता है परन्तु यदि यही मान ठीक हो कि कलियुग ४,३२,००० वर्षोंका होता है जिनमेंसे अब तक केवल ५,०४३ ही बीते हैं तो भी हमें कोई आपत्ति नहीं है।

कलियुग बुरा नहीं

परन्तु जो लोग कलियुगकी बात करते हैं वह इस नामके साथ इस बातको भी ध्वनित करते हैं कि यह युग पूर्ववर्ती युगोंसे बुरा है। उनके कथनके अनुसार इस युगमें अधर्मका प्राधान्य रहेगा और इसमें जन्म लेनेवाले मनुष्य इतरयुगीन मनुष्योंकी अपेक्षा अल्पायु, अल्पवीर्य, अल्पमेध और अल्पज्ञ होते हैं, उनसे पहिले लोगोंकी भांति पुरुषार्थ-सिद्धि नहीं हो सकती, वह योगादि कठिन साधनोंका अनुष्ठान नहीं कर सकते। मैं दृढ़ताके साथ कहना चाहता हूँ कि यह सारी बातें झूठी, सर्वथा निराधार हैं। मध्ययुगीन संस्कृतमें लिखी गयी कुछ अनुष्टुपबद्ध पोथियोंमें ऐसी बातें मिलती हैं पर उन पुस्तकोंको स्वतः-प्रामाण्य नहीं प्राप्त है। न तो वेदका मन्त्र-भाग ऐसा कहता है, न उपनिषत्-भाग। तर्क और प्रत्यक्ष अनुभवसे भी इन बातोंको आश्रय नहीं मिलता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए हम इनको माननेको प्रस्तुत नहीं हैं। हम कलियुगमें जन्म लेनेवाले किसी भी अन्य युगवालोंसे किसी भी बात में कम नहीं हैं।

कलियुगमें अधर्मकी प्रधानता होती है, यह कैसे माना जाय ? अभी कलिको ५,००० वर्ष बीते हैं, इनके इतिहाससे तो ऐसा नहीं प्रतीत होता। शङ्कर प्रभृति सभी आचार्य कलियुगमें ही हुए हैं। माना कि बीच-बीचमें म्लेच्छादि विदेशी और विधर्मी हमपर शासन करते रहे हैं और धर्मको महान् आघात पहुँचाते रहे हैं परन्तु ऐसा दूसरे युगोंमें भी हुआ है। हिरण्यकशिपु और महिषासुर जैसे बलवान धर्मद्वेषी कलियुगमें तो हुए नहीं। इनके शासनकालमें सहस्रों वर्षों तक धर्म लुप्तप्राय हो गया, अग्निहोत्र बन्द हो गये, वेद भूगर्भमें विलीनसे हो गये। कलियुगमें इससे बुरा क्या हुआ ? थोड़े दिनोंके लिए बुरी आँधी आयी, चली गयी ; फिर धर्मको सिर उठानेका अवसर मिला।

आयु और बल भी कम नहीं

यह बात किस आधारपर कही जाती है कि कलिकालमें लोग अल्पायु होते हैं ? भोजनकी कुव्यवस्था होनेसे इधर कुछ दिनोंसे भारतमें लोग अल्पायु-से हो गये हैं पर यह युगका दोष नहीं है, हमारी वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितिका परिणाम है और थोड़े दिनोंमें दूर हो जायगी। आज भी यूरोपके सम्पन्न देशोंमें लोग दीर्घायु होते हैं। यदि कलिमें आयु कम होती तो कलिके आगमनसे इस समयतक क्रमशः ह्रास देख पड़ता। पर ऐसा तो नहीं है। हमको इधर पिछले कुछ सहस्र वर्षोंके जिन लोगोंके आयुष्कालोंका पुष्ट प्रमाण मिला है वह आजकलके लोगोंकी अपेक्षा दीर्घजीवी न थे।

हमको यह बात स्पष्ट देख पड़ती है कि अब भी आयुकी ऊपरी सीमा पहिलेके बराबर पहुँचती है। यह ऊपरी सीमा दो ढाई हजार वर्षोंसे ही बँध गयी हो या कलिकालके ही लिए हो ऐसी बात नहीं है। श्रुति स्पष्ट कहती है 'शतायुर्वै पुरुषः'। प्रत्येक द्विज सूर्य्यको अर्घ्य देकर यह प्रार्थना करता है कि 'पश्येम शरदः शतम् , जीवेम शरदः शतम्' इत्यादि। इससे यह बात निश्चित है कि वेदके अनुसार अर्थात् आरम्भसे ही, मनुष्यकी पूर्णायु सौ वर्ष ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः ऐसा माननेके लिए कोई कारण नहीं है कि कलियुगमें मनुष्यकी आयुकी मर्यादा गिर गयी है।

ऐसा माननेका भी कोई कारण नहीं है कि आजकलके लोग पहिले वालोंसे शारीरिक बलमें कम होते हैं। भोजनादिकी व्यवस्था ठीक न होनेसे इस समय भारतके लोग पहिलेसे प्रायः नाटे, दुबले और दुर्बल हो गये हैं पर यह इस युगका धर्म नहीं है, यहाँकी विशेष परिस्थितियोंका परिणाम है जो इनके बदलने पर बदल जायगा। आज ही कल यूरोपके कुछ देशोंके निवासियोंकी ऊँचाई और दैहिक बलमें वृद्धि हो गयी है। ढाई तीन सौ वर्ष पुराने कपड़े, गहने और हथियार अब भी मिलते हैं। उनसे भी यही ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोग प्रायः आज जैसे ही थे। महेञ्जोदरोंमें पाँच सहस्र वर्ष अर्थात् कलियुगके आरम्भकालके घर मिले हैं, वह भी आजकल जैसे मनुष्योंके ही रहने योग्य हैं। वहीं गेहूँके दाने मिले: वह भी आजकलके गेहूँके बराबर थे। भूगर्भकी ऐसी चट्टानोंमें जो बीसों सहस्र वर्ष पुरानी हैं नर-कङ्कालके टुकड़े मिले हैं। उनसे भी यही प्रतीत होता है कि शरीरकी लम्बाई-चौड़ाई और शक्तिमें कोई उल्लेख्य अन्तर नहीं हुआ है। यों आज भी वह लोग जो भरपेट अच्छा खाना पाते हैं बलवान् होते हैं।

यह भी नहीं माना जा सकता कि आजकल बुद्धि-बल घट गया है। पहिले समयमें आजकी भाँति रेल-तार कहाँ था, बिजलीके प्रकाशका किसको पता था? एक पुष्पक विमानकी इतनी गाथा गायी जाती है, आज एक-एक देशमें कई सहस्र वायुयान हैं। धृतराष्ट्रको सञ्जयने व्यासजीके आशीर्वादसे युद्धस्थलका समाचार सुनाया, आज घर-घर रेडियो द्वारा ताजा समाचार सुना जा सकता है और अब तो दूरस्थ वस्तुओं का तत्काल चित्र भी लिया जा सकता है। बिना मन्त्र-बलके ही सैकड़ोंको मारनेवाले और बेहोश करनेवाले शस्त्र निकले हैं जिनमेंसे किसी किसीका निशाना दस पन्द्रह कोसतक जाता है। जन्मान्ध मनुष्य तकको पढ़ाया जाता है। शरीरके भीतरसे रोगी अवयव निकालकर कृत्रिम अवयव बैठा दिये जाते हैं। यह बात बुद्धिबलकी कमीको तो नहीं सिद्ध करती। आजकलके लोग प्राचीन शास्त्रोंको पढ़ जाते हैं और उनके साथ साथ सैकड़ों नयी पुस्तकोंको भी देखते हैं। यह मेधाके उपचयका प्रमाण है, ह्रासका नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर कैसे मान लिया जाय कि आज हमारा बुद्धिबल पहिलेके लोगोंसे कम है ?

ह्रासका दायित्व धर्मगुरुओंपर

मेरा यही कहना है कि ऐसा मानना कि हम कलियुगके प्राणी पहिलेवालोंसे किसी बातमें छोटे हैं सर्वथा निराधार है। वेदमें इस बात का समर्थन नहीं मिलता, प्रत्यक्ष अनुभव इसके विपरीत है। हमको अपने पूर्वजोंका आदर है पर अपनेको निकम्मा कहनेसे उनका आदर नहीं होता। हमारा ब्राह्मण-वर्ग न जाने कहाँसे यह ऊटपटाँग बात कहने लगा है कि कलियुगके लोग आधिभौतिक या आध्यात्मिक क्षेत्रमें वैसा पराक्रम नहीं दिखला सकते जैसा पहिलेवाले दिखला गये हैं। भर्तृहरिको उन लोगोंके लिए कोई शब्द नहीं मिला जो निरर्थक ही परहितको हानि पहुँचाते हैं। मैं पूछता हूँ कि उस पहरेदार को क्या कहा जायगा जो घरवालोंको बेहोशीकी औषध पिला देता हो जिससे वह चोर डाकू का सामना न कर सकें, उस गुरुको क्या विशेषण दिया जायगा जो शिष्यको ऐसी उलटी विद्या पढ़ाता हो जिससे वह परीक्षामें अवश्य ही अनुत्तीर्ण रहे ? जिन लोगोंको उनके धर्मगुरु चौबीस घण्टे यह पढ़ाते रहते हैं कि तुम दीन हो, दुर्बल हो, निकम्मे हो उनसे कैसे यह आशा की जा सकती है कि वह धर्मकी या देशकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ? इस प्रकार सिंहका बच्चा भी अपने सिंह-पनको भूल जायगा। यदि आज स्त्रियोंकी या देवालयोंकी रक्षा नहीं होती, यदि आज धर्मका ह्रास देख पड़ता है और देश परतन्त्र है तो इसका बहुत बड़ा दायित्व उन लोगोंपर है जो धर्मके नामपर ऐसा दुर्बल और स्वावलम्बनहीन उपदेश जनतामें फैलाते हैं।

पापात्मा क्यों ?

कहाँतक गिनाऊँ ? पूजा-पाठमें आजकल यह भी पढ़ा जाता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापोऽहं, पापकर्माहं, पापात्मा, पापसम्भवः ।

(मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ और पापसे मेरा जन्म हुआ है।) यह बात कहाँ से निकली ? जीवात्मा शुद्ध, चिद्धन, ब्रह्मसे अभिन्न है। अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि आदि महावाक्यों द्वारा श्रुति प्राणीके अन्तःकरणमें इस बातको निरन्तर दृढ़ करती रहती है। यदि इतना ऊँचा उपदेश उसकी बुद्धिमें न बैठे तब भी इतना तो वह समझ ही सकता है कि जीव ईश्वरका अंश है; तुलसीदासजीके शब्दोंमें 'ईश्वर अंस जीव अविनासी', ऐसी दशामें जबतक परमात्माको पापात्मा न माना जाय तब तक उसका अंश जीव कैसे पापात्मा हो सकता है ? और पापसे जन्म होना कैसे कहा जा सकता है ? जो लोग पूजा-पाठ करते हैं उनमें से अधिकाँश अपने माँ-बापकी वैध सन्तान होते हैं। वैध सन्तान होनेका अर्थ यह हुआ कि माता-पिताका शास्त्रोक्त विधिसे विवाह हुआ होगा। शास्त्रोक्त विवाह वैदिक संस्कार होता है; उसमें मन्त्रोंद्वारा देवगणका आह्वान होता है; इन्द्र, विष्णु, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, अश्विन, सूर्य सारे कृत्यके साक्षी होते हैं। विवाहके पीछे स्त्री-पुरुषके योगसे किस प्रकार सन्तानकी उत्पत्ति होती है, यह देवों और ऋषियोंके लिए अज्ञात विषय नहीं हो सकता। तो फिर हम क्या ऐसा मानें कि वेद-मन्त्र पापकर्मोंका विधान करते हैं और देवगण पापकर्मोंमें साक्षी बनकर आते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो शास्त्रानुकूल विवाह पाप-कर्म नहीं हो सकता और उसके फलस्वरूप जन्म लेनेवाला पापसम्भव नहीं कहा जा सकता।

यह तो एक निदर्शन मात्र है। ढूँढ़नेपर ऐसे सैकड़ों दूसरे उदाहरण मिलेंगे। ऐसी ही बातें कह-कहकर हमको भीरु बनाया जाता है। हमारे धर्म-गुरु, हमारे पुरोहित, हमारे प्रथप्रदर्शक हमारे चरित्रको उठानेके स्थानमें नीचे गिराते हैं; हमको स्वर्गसे ऊपर चढ़ानेके स्थानमें नरकसे भी नीचे ढकेलते हैं। हम उनको दक्षिणा देते हैं, उनके सामने सिर झुकाते हैं; इसका पुरस्कार यह मिलता है कि वह खड़े-खड़े हमारा घर लुटवाते हैं और अपनी नासमझीसे उसी डालको काटते हैं जिसने उनको आश्रय दे रखा है। यह अज्ञान और पाप अब बन्द होना चाहिये। ब्राह्मण-समुदायको अपनी आँखें खोलनी चाहियें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और इस उजड़ते घरको सँभालना चाहिये। मैं उनसे कहता हूँ—आपमें, आपके धर्ममें, बड़ी शक्ति है, उससे काम लीजिये, आप अजेय होंगे ; परन्तु यदि आप न चेते तो आपकी उपमा उस आगसे दी जायगी जो भोजन पकानेके लिए जलायी गयी पर भोजन देनेके स्थानमें अपने आश्रयदाता घरको भस्म करके आप भी ठण्ढी हो गयी। आप स्वयं नष्ट हो जायँगे पर अपने पहले हमारे समाजको नष्ट कर जायँगे।

एक बात आपसे और कहना चाहता हूँ। आपका हितू हूँ और आपके पूर्वजोंका आदर करता हूँ, यह चाहता हूँ कि आप भी आदरास्पद हों, इसलिए कहे बिना जी नहीं मानता।

धर्मका वर्तमान रूप

आप धर्मका नाम तो बहुत लेते हैं पर इस शब्दका प्रयोग किस अर्थमें करते हैं ? इसकी पूजा करो, इस जगह नहाओ, अमुक दिन उपवास करो, यह सब आपकी दृष्टिमें धर्म है। अमुक वस्तु मत खाओ, अमुकका छुआ जल मत पियो, अमुक मनुष्यको स्पर्श मत करो, यह भी धर्म है। पर और कुछ भी धर्म है या बस इतना ही ? मनुने जो 'आचारः प्रथमो धर्मः' कहा था, उस सम्बन्धमें आप क्या कर रहे हैं ? जब प्रथम धर्मकी जड़को आप पुष्ट नहीं करते तो फिर द्वितीय और तृतीय ओर उससे ऊपरके धर्म कैसे टिक सकते हैं ? पूजा-पाठ, खानपान तो आपके ध्यानमें है परन्तु 'अहिंसा सत्यमस्तेयम्' आदि जो चातुर्वर्णिक सार्व-भौम धर्म बतलाये गये हैं, जिनके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं होता, उनकी शिक्षा भी आप देते हैं ? मनुष्य-मात्रकी बात तो जाने दीजिये, ब्राह्मण समाजमें इनका प्रचार होता है ? यह सुन पाने पर कि अमुक ब्राह्मण-कुलोत्पन्न व्यक्तिने झूठो गवाही दी या चोरी की या यजमानके कहनेसे झूठी जन्म-कुण्डली बना दी आप उसको जातिच्युत करते हैं ? मनु भगवान्ने कहा है—

नानुतिष्ठति यः पूर्वाम् नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विज कर्मणः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहिये, प्रातः-सायं संध्या न करनेवाले कितने ब्राह्मण-नामधारियोंका आपने बहिष्कार किया है ? यदि यह सब नहीं होता तो फिर आपके दिये धर्मोपदेशका क्या मूल्य रहेगा ? आपने ईसाकी उस बातको कभी सुना है, जो उन्होंने एक समय अपने शिष्योंसे कही थी—तुम इस जगत्के नमक हो पर यदि नमक ही अपना स्वाद खो बैठे तो फिर उसमें नमकीन स्वाद कहाँसे लाया जा सकता है ?

यह जो निर्धनोंका निर्दय शोषण हो रहा है उसको आप देखते हैं या नहीं ? शोषकोंमें आपके यजमान सेठ-साहूकार-जमीनदार भी हैं। फिर आप उनकी कभी भर्त्सना भी करते हैं ? पीड़ितोंका करुण-क्रन्दन आपके कानों तक कभी पहुँचता तो होगा ? फिर आप क्या उपाय सोचते हैं ?

युद्धके नामपर जो बराबर नरमेध होते रहते हैं उनको देखकर आपको भी कभी प्रतिकार करनेकी इच्छा होती है ? नृशंस शासकोंको कभी आप भी उनका कर्तव्य जताते हैं ? जगत्में शान्ति फैले, लोग समृद्ध और सुखी हों, इसके लिए आप क्या प्रयास कर रहे हैं ? यह मैं जानता हूँ कि यदि कोई दक्षिणा देनेको तैयार हो तो आप बहुतसे जप और याग बता सकते हैं पर यह तो व्यवसायकी बात हुई। इसमें आपका अपना उपक्रम कुछ नहीं है। ईसाइयोंके धर्माध्यक्ष यों चुप नहीं बैठते। चाहे मदान्ध जनता उनकी न सुने पर वह अपनी बुद्धिके अनुसार धर्मका उपदेश देना अपना कर्तव्य समझते हैं। नेताका यही लक्षण है। आप हमारे नेता हैं और आपका नेतृत्व जन्मसिद्ध है। फिर आपका भी हमारे प्रति, जगत्के प्रति, कोई कर्तव्य है ?

नेतृत्वकी योग्यता प्राप्त करें

मैं चाहता हूँ कि आप इन बातोंपर विचार करें। जो पैसेके लिए नहीं वरन् कर्तव्यबुद्धिसे इस दृश्य जगत्के भी झंझटोंमें निर्भयता और त्यागके साथ हमारा पथ-प्रदर्शन करनेको आगे बढ़ता है उसीपर श्रद्धा होती है। अदृश्य जगत्के सम्बन्धमें भी उसकी बात माननेको जी नहीं चाहता जो पोथियोंको तोतेकी भाँति रटकर हमसे उस लोककी बात करता है जिसको उसने स्वयं नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखा है और इस अनुभूयमान जगत्में न अपने चरित्रको ऊँचा करता है न दूसरोंको ऊँचा उठानेका प्रयत्न करता है। जो कायरोंकी भाँति इस बहानेकी आड़में छिपना चाहता है कि मैं क्या करूँ, यह काल ही पतित है, मेरी कोई सुनता नहीं, वह अपनेको नेतृत्वके अयोग्य घोषित करता है। वह धर्मके प्रवचन करनेका अधिकारी नहीं है, क्योंकि वह धर्मके तत्वसे स्वयं अनभिज्ञ है। मैं चाहता हूँ कि आप अपने पुराने गौरवान्वित पदको पुनः सुशोभित करें, इसी उद्देश्यसे आपको यह सब सुनाता हूँ।

मेरा ऐसा करना अनधिकार चेष्टा नहीं है। आप धर्मशास्त्रके पण्डित होंगे परन्तु आपकी बात तभीतक मान्य होगी जबतक हमको आपके आप्त होनेपर विश्वास रहेगा। जिस वैद्यकी औषधसे धड़ाधड़ रोगी मरते जाते हों वह कबतक मान्य रह सकता है?

हमारे सनातनधर्मको, हमारी वैदिक संस्कृतिको, आपके पूर्वजोंने, जो हमारे भी पूर्वज और श्रद्धाभाजन थे, अपने तपसे पल्लवित किया था, अपने लोहूसे सींचा था। हमको इसपर श्रद्धा है, इससे प्रेम है, इसपर गर्व है। आपके प्रमादसे यह अश्वत्थ उच्छिन्नमूल हो रहा हो और हम चुपचाप देखते रहें यह नहीं हो सकता। जो घर जल रहा है वह अकेला आपका ही नहीं है, हमारा भी है। हमारा विश्वास है कि इसकी छायामें केवल हिन्दुओंको या भारतीयोंको ही नहीं प्रत्युत मनुष्यमात्रको सुख-शांतिकी उपलब्धि हो सकती है, पर आप इसको ऐसा पङ्गु बनाते जा रहे हैं कि यह किसीको लाभ नहीं पहुँचा सकता; उलटे, अपने अनुयायियोंको भीरु चरित्रहीन, असत्यरत और दम्भी बना देता है। मैं आपसे कहता हूँ कि अपने धर्मकी, अपने पूर्वजोंकी, अपनी मर्यादाको पहिचानिये; गौण बातोंको छोड़कर मौलिक बातोंको पकड़िये; बुद्धिके प्रकाशमें विद्यासे काम लीजिये। आप तप और त्यागको अपनाइये, हमको भी यह दीक्षा दीजिये; आप ब्राह्मण बनिये और फिरसे आर्य जातिको, भारतवर्षको, मनुष्य-जातिको ऐहिक और आमुष्मिक कल्याण-मार्गका पथिक बनाइये। दो बातें स्मरण रखिये:—'वीरभोग्या वसुन्धरा' और 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आक्षेपों के उत्तरमें*

(१)

जेलमें लिखा 'ब्राह्मण सावधान !' शीर्षक निबन्ध छपनेके लिए भेजते समय मुझे यह आशा नहीं थी कि इसकी ओर लोगोंका ध्यान इतना आकृष्ट होगा। परन्तु 'आज'-सम्पादककी कृपासे जो लेखमाला इस सम्बन्धमें निकली है उससे प्रतीत होता है कि निबन्ध सचमुच सामयिक था और विचारोंको जागरित करनेमें समर्थ हुआ। मेरे पास जो बहुतसे पत्र आये हैं वह भी इस धारणाकी पुष्टि करते हैं। 'आज' के सिवाय और भी बहुतसे पत्रोंमें इस विषय पर लेख निकलते हैं। मुझे यह कदापि खयाल नहीं था कि सब लोग मेरी सब बातोंसे सहमत होंगे। ऐसा तो वही सोच सकता है जो सर्वज्ञ होनेका दावा करता हो। परन्तु यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई कि मैं बहुतसे लोगोंको इन विषयों पर सोचनेके लिए बाध्य कर सका।

लेखोंका वर्गीकरण

मैंने न सब पत्रोंको देखा है, न सब लेखोंको। जो लेख पक्षमें आये हैं उनके लेखकोंसे यही निवेदन कर सकता हूँ कि आप विद्वान् हैं, आपकी शक्तिका इस जीर्णशीर्ण धर्मके पुनरुत्थानमें उपयोग करें। विरोधी लेखोंको सुगमताके लिए दो वर्गोंमें बाँट सकते हैं। एक वर्गमें वह लोग हैं जिन्होंने तर्कका स्थान गालीको दिया है। उनकी समझ में यह आया कि अब्राह्मणों, आर्यसमाजियों, कायस्थों और मुख्यतया मुझको, बुरा-भला कहनेसे धर्मकी सेवा हो गयी। यह बेचारे शास्त्रका अर्थ नहीं जानते, हिन्दी भाषा तक नहीं जानते, शिष्ट पुरुषोंके

---

* मेरे निबन्धके पक्षविपक्षमें प्रकाशित हुए सब लेखोंको देना सम्भव नहीं था, न सब आक्षेपोंकी प्रत्यालोचना करना ही आवश्यक है। मैंने मुख्य बातोंका ही उत्तर दिया है। आलोचकोंने क्या कहा है इसका अनुमान मेरे उत्तरसे ही हो जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाजका चलन नहीं जानते। इनकी कही बातोंकी ओर ध्यान देना बेकार है। बालकोंके मुँह लगना शोभा नहीं देता। दूसरे वर्गमें वह विद्वान् लोग हैं जिन्होंने एक या अनेक लेखों में शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर मेरे निबन्धकी आलोचना की है। मैं इस वर्गके उदाहरण-स्वरूप 'आज' में निकले अपने मित्र पं० बलदेव मिश्र तथा पं० हीरावल्लभ शास्त्री और 'संस्कृतम्' में निकले पं० दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वतके लेखोंको मानता हूँ। यह लेखक विद्वान् हैं, इनको धर्मसे प्रेम है और सहमत न होते हुए भी मैं इनका आदर करता हूँ। इनमें भी कोई-कोई महोदय अब्राह्मणोंके प्रति अपने घृणाभावका संवरण न कर सके। पं० दीनानाथजी मेरा उल्लेख बराबर 'बाबू महाशयके रूपमें करते हैं। अस्तु, मैं इसका बुरा नहीं मानता। ऐसा मानना चाहिये कि 'अतिरिच्य गुणान् सर्वान्', पुराने संस्कारोंने उन्हें भी दबा लिया।

ब्राह्मण सावधान नहीं हैं

दो तीन बातें ऐसी हैं जो इस वर्गके सभी लेखोंमें किसी न किसी रूपसे आयी हैं। एक तो यह है कि ब्राह्मणोंको सावधान होनेका उपदेश देना अनावश्यक है, वह सदा सावधान हैं। मुझे दुःख है कि मैं इस बातको स्वीकार नहीं कर सकता। मैं क्या, कोई भी हिन्दू जो अपने समाजकी दीन-हीन दशाको देखकर व्यथित होता हो इस बातको नहीं मान सकता। लाखों हिन्दू गाजी-मियाँ और हसन-हुसैनको पूजते हैं, फिर भी ब्राह्मण जागरूक हैं! बतलाइये, आपने इसके विरुद्ध कब, कैसे, कहाँ आवाज़ उठायी? क्या इनके घरोंपर आप पौरोहित्य नहीं करते? साधारण मनुष्य ही नहीं राजे-महाराजे भी ताजिया निकालते हैं। आपने ग्वालियरका विशाल ताजिया देखा है? किस ब्राह्मणने यह कहा कि जबतक ग्वालियर-नरेश ताजिया निकालेंगे तबतक मैं न इनके यहाँ पौरोहित्य करूँगा, न अन्न ग्रहण करूँगा? उनके यहाँ पौरोहित्य करने-वालोंकी भर्त्सना कब किस विद्वत्परिषत्‌ने की? देवगण ३ हैं या ३३ या ३०३३ या ३३ करोड़, इसपर तो आप बहुत कुछ कह-सुन सकते हैं। क्या गाजीमियाँ और हसन-हुसैन भी इस बड़ी संख्या में हैं? अभी एक महीना भी नहीं हुआ एक अंग्रेज सज्जन, श्री एल्विनने रोमाञ्चकारी भाषामें बतलाया है कि मध्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रान्त के कई लाख गोंड़-भील हिन्दूसे ईसाई बनाये जा रहे हैं। देखते देखते गाँवके गाँव जय रामकी जगह जय ईसू कहने लगे हैं। कहिये, आपको भी इसकी खबर थी ? दूर वालोंको चाहे पता न हो पर मध्यप्रान्तमें भी डुकृञ्करणे रटनेवाले होंगे ही, पुरोहित होंगे ही, संस्कृत पाठशालाओंके अध्यापक होंगे ही, व्यवस्था देनेवाले शास्त्री होंगे ही। सब लोग कहाँ पिनक ले रहे थे ? फिर भी आप अपनेको सावधान कहते हैं !

जब बौद्धादिसे शास्त्रार्थ करना पड़ा तो आपके पूर्वजोंने, जो सचमुच जागरूक थे, नव्य न्यायकी सृष्टि की। आज इतने दिनोंसे मुसलमान और ईसाई देशमें हैं। सबसे बढ़कर आज विज्ञानका सामना है। कहिये, आपने भी किसी नव्य न्यायकी बात सोची है ? मनोविज्ञान और भौतिक विज्ञान चकाचौंध कर देते हैं। शिक्षित व्यक्ति पाश्चात्य संस्कृतिकी ओर खिंच जाता है। उसको नास्तिक कहनेके सिवाय आप और क्या करते हैं ? हमारे ऊपर यह लाञ्छन लगाया जाता है कि हमारे प्राचीन वाङ्मयमें कर्तव्यशास्त्रपर कोई ग्रन्थ नहीं है। पाश्चात्य दार्शनिकोंने इस विषयपर बहुत कहा है। आज यह कहनेसे काम नहीं चलेगा कि जो श्रुति कह दे वह कर्तव्य है। आपने कर्म-विषयक जिज्ञासाकी तुष्टिके लिए, आजकलकी परिस्थितिमें उत्पन्न होनेवाली शङ्काओंके उच्छेदनके लिए, क्या किया है ? आप पुरानी पोथियोंसे चाहे जितने अवतरण दे जाइये, हम तो यह जानते हैं कि फलेन परिचीयते। हमारे घरमें आग लगी है, चोर सेंधमें घुसे हैं। हम जब यह देखें कि आप सक्रिय रूपसे इस दुरवस्थाका सामना कर रहे हैं तभी आपको सावधान मान सकते हैं।

ब्राह्मणोंका दायित्व

कई महानुभावोंका यह कहना है कि तुम अकेले ब्राह्मणोंको क्यों दोष देते हो क्षत्रिय और वैश्य भी कर्तव्यच्युत हैं। यह ध्यान देनेकी बात है कि इस सम्बन्धमें किसीने बेचारे शूद्रोंका नाम नहीं लिया। मैं यह जानता हूँ कि ब्राह्मणोंके अतिरिक्त और लोग भी अपना धर्म छोड़ बैठे हैं पर इससे ब्राह्मण दोष-मुक्त नहीं हो सकते। 'नगणस्याग्रतो गच्छेत्' वाली पुरानी उक्ति सच है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण हमारे अग्रणी हैं। क्या धर्मकी रक्षाके लिए सहस्रों क्षत्रियों तथा दूसरे लोगोंने अपने प्राण नहीं दिये, वैश्योंने करोड़ों रुपये व्यय नहीं किये ? फिर भी, हम सब धर्मको रक्षाका श्रेय ब्राह्मणोंको ही देते हैं। यश तो आप लेंगे, अपयश कौन लेगा ? जैसे यह उचित है कि युद्धमें विजयका सेहरा सेनापतिको मिले वैसे ही यह भी उचित है कि हारका हेतु वही माना जाय।

परिस्थितिका बहाना

यह बार-बार कहा जाता है कि ब्राह्मण क्या करें, परिस्थिति अनुकूल नहीं है, जनता सुनती नहीं, राज विधर्मियोंके हाथमें है। यह सब ठीक है पर इस प्रलापकी आड़में अकर्म्मण्यताको आश्रय नहीं दिया जा सकता। ईसाई मिशनरी ऐसे देशोंमें जाकर अपने धर्मका प्रचार करते हैं जहाँ शासन भी प्रतिकूल होता है, जनता भी प्रतिकूल होती है। जब बौद्ध भिक्षु तुर्किस्तान, चीन, बर्मा और जापानमें धर्मका प्रचार करने गये थे तो क्या उन देशोंमें अनुकूल परिस्थिति थी ? क्या कुमारिल भट्ट और भगवान् शङ्कराचार्यके कालमें भारतमें प्रतिकूल परिस्थिति नहीं थी ? सिक्ख गुरुओंको कैसी परिस्थितिका सामना करना पड़ा था ? अपना हृदय टटोलिये। सच्ची धर्मनिष्ठा और सच्चे तपोबल परिस्थितियोंकी परवाह नहीं करते। उनलोगोंसे शिक्षा ग्रहण कीजिये जो बलवान् राजोंके विरुद्ध हथेलीपर प्राण लेकर विद्रोह करनेको तैयार हो जाते हैं। 'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महताम् नोपकरणैः'।

(२)

प्रमाणग्रन्थ

आप लोग मुख्य और गौणमें भेद करना ही भूल गये हैं। यदि कोई गीत-गोविन्दको अश्लील कहता है तो उससे यह पूछा जाता है कि तुम वेदको अश्लील क्यों नहीं कहते ? इस तर्कका प्रभाव क्या होगा ? वेदके प्रति श्रद्धा कम हो सकती है परन्तु गीतगोविन्दके प्रति श्रद्धा बढ़ नहीं सकती। वेदको इन झगड़ोंसे पृथक् रखना चाहिये। यदि आप संस्कृतकी प्रत्येक पोथीको वेदका समकक्ष मानेंगे तो वेदकी मिट्टी खराब होगी और कुछ न होगा। बार-बार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप लोग स्मृतियों और पुराणोंकी दुहाई देते हैं। आप कहते हैं कि इन ग्रन्थोंके रचयिता मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं, अतः यह ग्रन्थ भी प्रमाण हैं। यदि कोई बात वेदमें न लिखी हो और इनमें मिल जाय तो उसको मानना चाहिये। सम्भव है, उसकी पोषक वैदिक शाखाका लोप हो गया हो।

यह मैं भी जानता हूँ कि 'इतिहासपुराणाभ्याम्, वेदार्थमुपबृंहयेत्।' पुराणोंमें दर्शन, धर्म, उपासना, इतिहास, भूगोलकी प्रभूत सामग्री है और समझदार लोग उसका उपयोग कर रहे हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि पुराणोंको वेदोंके बराबर मान्यता दी जाय। आप लोग पुराणोंको पढ़ते ही नहीं, यदि पढ़ते तो स्वयं इसी परिणामपर पहुँचते। पुराकालकी कथाओंको विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे कहा गया है परन्तु इसका तो सीधा उत्तर आप यह दे देंगे कि यह कल्पभेदकी बात है। परन्तु कलियुगके राजवंशोंके सम्बन्धमें ऐसा कह देनेसे काम न चलेगा। भविष्यवाणीके रूपमें यह बताया गया है कि अमुक-अमुक वंश होंगे, अमुक-अमुक राजा होंगे। पुराणोंको पढ़िये, सूचियोंमें कुछ साम्य है पर नामोंमें भेद पड़ता है। ऐसा क्यों? क्या जिस मन्त्रद्रष्टा ऋषिने सब पुराणोंकी रचना की उसको स्मृतिभ्रंश हो जाया करता था? यकायक गुप्तकालके राजाओंके बादके नाम क्यों नही मिलते? दैत्य और राक्षस बुरे थे पर यज्ञ-यागादि करते थे। उनका तो उल्लेख है पर धर्म्मके महाशत्रु महमूद गजनवी और औरङ्गजेबका जिक्र क्यों नहीं है? महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी क्यों छूट गये? सम्प्रदाय-प्रवर्तक वल्लभ और निम्बार्क जैसे आचार्योंका जिक्र क्यों नहीं आया? क्या उस ऋषिकी त्रिकाल-दर्शन-शक्ति गुप्तकालके आगे कुण्ठित हो गयी? सीधी बात यह है कि पुराणोंके रचयिता त्रिकालदर्शी ऋषि नहीं प्रत्युत दूसरे लोग थे जो गुप्तकालके लगभग हुए थे। यह काल हिन्दुओंके उत्कर्षका था। उस समय यह ग्रन्थ बने। उन लोगोंको अपने समय तकके इतिहासका जितना ज्ञान था उतना भविष्यद्वाणीके रूपमें लिख दिया। यदि उसके आगेकी बात कहते तो पकड़ी जाती। झूठी बात पुराणको झूठा प्रमाणित कर देती। कभी व्यासदेवने अपने शिष्योंको प्राचीन इतिहास बताया होगा पर उनको एतत्कालप्राप्त पुराणोंका रचयिता कहना उनका उपहास करना है। आप ऐसा करें, मैं ऐसे पूज्य व्यक्तिका खिलवाड़ नहीं कर सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यही बात स्मृतियोंके लिए लागू है। वेदों तकमें मनवः, भृगवः, अङ्गिरसः, प्रयोग आये हैं। मन्त्रद्रष्टा वैदिक ऋषियोंके वंशधर उनके नामसे प्रसिद्ध होते थे। बहुतसे भृगु, अङ्गिरा, वशिष्ठ हो गये हैं। ऐसा नहीं माना जा सकता कि जिस ऋषिके द्वारा सतयुगमें मन्त्रदर्शन हुआ, वेदमन्त्र अवतरित हुए, उसीने लौकिक संस्कृतमें स्मृतिकी रचना की। सतयुगसे स्मृति निर्माण करनेतक लाखों वर्ष होते हैं तबतक तो जीते रहे, फिर कुछ ऐसी महामारी आयी कि सब यकायक एक साथ मर गये! शतपथ ब्राह्मण और स्मृतिवाले याज्ञवल्क्य उतने ही भिन्न व्यक्ति हैं जितने कि शारीरक भाष्यके रचयिता और गोवर्धन पीठके वर्तमान अध्यक्ष, यद्यपि वह दोनों याज्ञवल्क्य कहलाते थे, यह दोनों शङ्कराचार्य कहलाते हैं। ज्यों-ज्यों समय बदला त्यों-त्यों तपस्वी विद्वानोंने धर्मके मूल तत्वोंकी रक्षा और समाजके कल्याणके लिए नये स्मृतिग्रन्थोंकी रचना की। यह ग्रन्थ हमारे लिए आदरणीय हैं परन्तु न इनको श्रुतिका दर्जा प्राप्त है न इनके रचयिताओंको मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका। हम इनकी सहायता से धर्मके स्वरूपको, वेदार्थको, समझनेमें समर्थ होते हैं पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इनके बाद वेदके स्वतन्त्र अध्ययनकी आवश्यकता नहीं रह जाती। इनकी मान्यता वहींतक है जहाँतक हम इनको वेदानुकूल पाते हैं। वेदके सिवाय कोई और ग्रन्थ किसी पद्धति या आचारको असन्दिग्ध मान्यता नहीं दे सकता। अन्यथा अनवस्था हो जायगी। पूर्वमीमांसाका एक अधिकरण होलीको वैदिक बना सकता है तो तुलसीदासजीके आधारपर विवाहमें गाली गाना भी वैदिक है। फिर तो कोई रस्म-रवाज, कोई प्रथा निन्द्य है ही नहीं। लुप्त श्रुतिका नाम लेना बड़ा भयावह है। इस आधारपर किसी भी कुरीति तथा दुष्टमतका समर्थन किया जा सकता है।

इन पुस्तकोंका उचित आदर करते हुए भी आपको संस्कृतकी प्रत्येक पोथीको प्रमाण माननेकी प्रवृत्ति छोड़नी होगी। आपके पूर्वज बुद्धिमान थे, वह केवल श्रुतिको स्वतः प्रमाण मानते थे और किसी भी ग्रन्थको यह पद देनेको तैयार नहीं थे।

अमुक व्यक्ति महापुरुष है इसलिए उसकी बात यथार्थ होगी ही, ऐसा नहीं माना जा सकता। उस व्यक्तिकी बात ठीक जँचती है, इसलिए वह महापुरुष है—यही उचित पद्धति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्ममें तर्कका स्थान

धर्मका निर्णय केवल तर्कसे नहीं हो सकता, इस बातको सिद्ध करनेके लिए बड़ा परिश्रम किया गया है। यह सब बेकार था। मैंने कभी नहीं कहा कि धर्मका पूर्ण ज्ञान या निर्णय तर्कसे होता है। आप मेरी पुस्तक 'चिद्विलास,' जो ज्ञानमण्डलसे निकल चुकी है, पढ़िये। मैं ऐसा मानता हूँ कि धर्मके स्वरूपको योगिजन ही ठीक-ठीक समझ सकते हैं। परन्तु योगिजन नित्य उपलब्ध नहीं होते। काम चलाना पड़ता है ऐसे लोगोंको जो योगी नहीं हैं। वह श्रुति तथा योगियोंके वाक्योंकी व्याख्या तर्क द्वारा ही कर सकते हैं। इसीलिए कहा है कि 'यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः'। तर्क समाधिजन्य धर्मसाक्षात्कारका स्थान नहीं ले सकता परन्तु जबतक कोई ऐसा व्यक्ति सामने नहीं आता जिसकी वाणी आप्तवाक्य मानी जा सके तबतक बुद्धि और तर्कसे ही काम लेना होगा। निश्चय ही आस्तिक मनुष्यका तर्क श्रुतिकी परिधिके भीतर ही रहेगा। वह श्रुतिको, शब्दको, प्रमाण मान लेगा पर श्रुति क्या कहती है इसका निर्णय भी तर्कसे होगा। अमुक स्मृतिकार या टीकाकारका इस विषयमें ऐसा मत है कहना पर्याप्त नहीं हो सकता। उस मतकी समीक्षा भी तर्कसे ही होगी।

वेदाध्ययनका ह्रास

बड़े बड़े हेतु देकर यह सिद्ध करनेका यत्न किया गया है कि वेदोंके पठन-पाठन में कमी नहीं हुई है। प्रत्यक्ष तर्ककी अपेक्षा नहीं करता। मुझसे कहा जाता है कि तुमको काशीमें ही वेदवित् मिल जायँगे। ठीक है, पर इससे क्या होता है ? भारतमें अब भी ऐसे लोग मिल जायँगे जो यथेच्छ यथारुचि भोजन कर सकते हैं पर इसका यह अर्थ नहीं है कि देशमें अन्नकष्ट नहीं है। कहाँ तो 'अधीत्य वेदान् वेदौ वा वेदं वा'—चारों वेद, दो, वेद या कमसे कम एक वेद—पढ़कर ही कोई विद्यार्थी स्नातक हो सकता था, गुरुकुल छोड़ सकता था, कहाँ आज आप केवल ज्योतिष, केवल साहित्य, केवल न्याय, केवल व्याकरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढ़नेवालेको पण्डित मान बैठते हैं और फिर कहते हैं कि वेदाध्ययन ज्योंका त्यों हो रहा है ।

जो अपनेको रोगी माननेको तैयार नहीं होता, जो रोगकी ओर ध्यान दिलानेवालेको शत्रु मान लेता है, उसका स्वस्थ होना कठिन होता है। आप अपनी मनोवृत्ति ऐसी न बनाइये।

(३)

मेरी आलोचना करनेके प्रसङ्गमें जितनी बातें कही गयी हैं उन सबकी आलोचना करनेसे यह लेखमाला बहुत लम्बी हो जायगी। केवल तीन चार बातोंके सम्बन्धमें कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

देवोंकी संख्या

इस सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कही गयी हैं। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' से लेकर ३, ३३ से बढ़कर ३३ करोड़ तकका समर्थन किया गया है। श्री दीनानाथ शास्त्री मुझको डाँटकर बताते हैं कि वर्तमान कालमें प्राप्यमान चारों वेद ही वेद नहीं हैं, ११३१ तो अकेले मन्त्र संहिता हैं। फिर इनके ब्राह्मणादि हैं। यह कहकर मुझसे पूछते हैं कि क्या तुम इन सबको पढ़ गये हो? मेरा उत्तर यह है कि जो अलभ्य हैं उनको न आपने पढ़ा है न मैंने; जो लभ्य हैं उनको आपने तो पढ़ा ही होगा, मैं भी थोड़ा बहुत पढ़ ही गया हूँ। देव-संख्याके बारेमें जो बातें कही गयी हैं उनको मैं जानता हूँ। अपनी 'सृष्टिक्रम विचार' नामक पुस्तकके चौथे और उन्नीसवें पृष्ठोंपर मैंने इस प्रश्नपर विचार किया है। रुद्र, वसु और आदित्य व्यक्तिवाची नहीं प्रत्युत वर्गवाची शब्द हैं, यह शास्त्रोंके सब पाठकोंको विदित है। एक आद्या-शक्ति असंख्य शक्तियों, असंख्य देवताओंके रूपमें व्यक्त हुई है, इन देवताओंके प्रतीक असंख्य देव हैं। वही परा शक्ति शान्ति, क्षान्ति, विद्या है; वही क्षुधा, तृष्णा, अविद्या है। परन्तु उसके सभी रूपोंकी उपासना नहीं की जाती। मोह, क्षुधा, परदारगमनप्रवृत्तिकी पूजा नहीं होती। इसीलिए शास्त्रकारोंने देवोंके उपास्यगणोंका वर्गीकरण कर दिया, प्रत्येक वर्गके प्रधान देवोंके, जिनकी उपासना होनी चाहिये, नाम बता दिये। इसके बाहरके नाम त्याज्य, अनुपास्य, हैं, यद्यपि वह भी ब्रह्ममें ही अध्यस्त हैं। गङ्गा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल और सुरा दोनों तत्त्वदृष्ट्या ब्रह्मसे अभिन्न हैं परन्तु मदिराको गङ्गाजलकी उपादेयता प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार वैदिक देवसूचीके बाहर जानेकी अनुमति नहीं दी जा सकती। किस कसौटीपर यह बात जाँची जायगी कि ईसा या मुहम्मद, हसन हुसैन या गाजीमियाँ ३३ करोड़के बाहर हैं ? इनके इतिवृत्तोंको पढ़कर इनको भी अग्नि आदिका भेद सिद्ध किया जा सकता है। ईसाई और इस्लाम धर्मोंके अनुसार सभी फरिश्ते तैजस शरीरधारी हैं। तो फिर क्या उचित होगा कि 'अग्नये स्वाहा' की जगह, या साथ साथ, 'जिब्राईलाय स्वाहा' पढ़कर आहुति दी जाय ? वैदिक देवसूची काफी लम्बी है। उसके बाहर जानेपर कहीं रुकनेको स्थान न मिलेगा।

वेदोंमें सर्पादि

मेरा निवेदन यह है कि येनकेन प्रकारेण लौकिक रूढ़ियोंकी पुष्टि करनेके उद्देश्यसे वेदोंकी छीछालेदर न कीजिये। पं० हीरावल्लभ शास्त्री कहते हैं कि वेदोंमें 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' वाक्य आया है, इससे सिद्ध हुआ कि नागपूजा वैदिक है। परन्तु वेदोंमें तो आया है 'नमो वाणिजाय', 'नमः स्तेनानां पतये', 'नमः तस्कराणां पतये', 'नमस्तक्षभ्यः', 'नमः श्वभ्यः', । इससे यह सिद्ध हुआ कि वेद कहता है कि बनियोंकी, चोरोंकी, बढ़इयोंकी और कुत्तोंकी पूजा किया करो। यह सब कहना वेदका उपहास करना है। वेद रुद्रके, परमात्माके, सर्वमयत्वको समझा रहा है—वही सर्प, वही चोर, वही कुत्ता, वही सेनापति, वही सभा, वही सब कुछ है। तुलसीदासजी कहते हैं 'सियाराममय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी', तो उनका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि जगके मेध्य-अमेध्य, जड़-चेतन, जितने भी अवयव हैं सबको व्यष्टिरूपेण प्रणाम किया जाय। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सच्चा सिद्धान्त है ; यह ठीक है कि किसी अधिकारीके लिए प्रतीकोपासना श्रेयस्कर होती है ; यह भी ठीक है कि प्रतीकोपासक पौत्तलिक नहीं होता; वह प्रतीकमें प्रतिष्ठित देवताकी और तद्व्याजेन परादेवता, परमात्मा,की पूजा करता है ; परन्तु प्रतीक ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा उपासककी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। पशु-पक्षी, कीड़े-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मकोड़े, पेड़ या ब्रह्मराक्षसकी पूजा अवैदिक है शङ्कर। विष्णु, इन्द्र, महागौरीकी पूजा करनेवाले हिन्दूसे साँप, बिच्छू, शीतला, मसान, डीहके सामने सिर झुकानेको कहना पाप करना और कराना है।

मन्त्रोंका विनियोग

जिस किसीने भी वैदिक वाङ्मयका किञ्चित् अध्ययन किया है वह जानता है कि मन्त्रोंका विनियोग सर्वत्र उनके शब्दार्थके अनुसार नहीं किया जाता। इस बातको मुझे समझानेके लिए प्रयास करना अनावश्यक था। परन्तु स्पष्टार्थ-का परित्याग सर्वत्र नहीं होता। यदि कहींपर 'गाव अयजन्त'—गउओंने यज्ञ किया—लिखा हो तो वहाँपर यह सोचना होगा कि गउओंका यज्ञ करना असम्भव है, निश्चय ही यहाँ कोई दूसरा अर्थ होना चाहिये। पर जहाँ स्पष्ट अर्थ अप्राकृतिक, धर्मविरुद्ध या अप्रासङ्गिक न हो वहाँ अर्थवादकी कल्पना करना ठीक नहीं है। इसी प्रकार जो मन्त्र जिस प्रसङ्गमें आया है उससे भिन्न प्रसङ्गमें उसका विनियोग तभी ठीक माना जा सकता है जब इस बातके पक्षमें असन्दिग्ध और पुष्ट प्रमाण हों। पीछेकी बनी पुस्तकोंका प्रामाण्य न पुष्ट है, न असन्दिग्ध, क्योंकि वह अपने समयकी प्रचलित बातोंको लिखती हैं। हाँ, यदि श्रुति स्वयं कहीं ऐसा सङ्केत करे या श्रौतसूत्रकार ऋषि ऐसा कहते हों या, कमसे कम, प्रसिद्ध भाष्यकार, जिन्होंने सभी उपलब्ध सामग्रीका उपयोग किया होगा, ऐसा उल्लेख करते हों तब ही मन्त्रका अन्यत्र विनियोग मान्य हो सकता है। 'शन्नो देवी' वाला मन्त्र यजुर्वेदके ३६ वें अध्यायमें आया है। वहाँ शनिका कोई प्रसङ्ग नहीं है। मन्त्र स्पष्ट रूपसे जल-सम्बन्धी है। किसी भी वेदमें एक भी मन्त्र शनि नामक किसी देवताके निमित्त नहीं आया है। ऐसी दशामें कोई पीछेका रचा ग्रन्थ इसको शनिपरक नहीं बना सकता।

पुराणोंमें देवगणकी दुर्दशा

कई पण्डितोंका यह कहना है कि पुराणोंमें जिन देवोंकी दुर्विनीत कथाएँ दी गयी हैं वह आजानदेव नहीं प्रत्युत कर्मदेव हैं। पुराणोंमें इसका उल्लेख नहीं है, इससे अनुमान होता है कि पुराणकारोंकी बुद्धिमें यह बात नहीं थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर मान लिया जाय कि यह बात सच है, तब भी इन कथाओंसे क्या बात निकलती है ? कहा जाता है कि यज्ञादि वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानसे चित्तकी शुद्धि होती है। यह लोग दीर्घ तप और लम्बे यज्ञानुष्ठानके बाद भी ईर्ष्यालु और कामी बने रहे ? इन्द्र पदपर पहुँचा व्यक्ति यह क्यों नहीं जान सका कि कोई लाख तप करे मैं नियत कालतक अपने पदसे नहीं हट सकता ? बार-बार यह लिखा मिलता है कि अमुकको तप करते देखकर इन्द्र डर गये कि मेरा पद छिन जायगा। यह बात समझमें आती है कि जो व्यक्ति परपीड़नकी शक्ति-सङ्ग्रह करनेके लिए तप करता हो उसके काममें बाधा डाली जाय परन्तु देवोंमें परोत्कर्षके प्रति असहिष्णुता न होनी चाहिये। क्या उन्होंने शास्त्रका यह उपदेश नहीं सुना है कि सुख-दुःख पुण्यापुण्यके प्रति मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षा भाव रखना चाहिये ? बेचारे हरिश्चन्द्र क्या इन्द्र पदके लोलुप थे जो उनको इतना तङ्ग किया गया ? यह उनका अपना व्यक्तित्व था कि सारे दुष्प्रयास निष्फल हुए और उनका यशःसौरभ सर्वत्र फैल गया, पर इसका श्रेय इन्द्रादिको नहीं मिल सकता ; कोई किसीको विष दे और वह विष अकस्मात् भेषजका काम कर जाय तो इसके लिए विष देनेवालेकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

आज महात्मा गान्धीकी विशेषता यह है कि वह कहते हैं कि सत्य और अहिंसाका कभी परित्याग न करना चाहिये। सन्त महात्माओंका यह कहना है कि केवल साध्यका निर्दोष होना पर्याप्त नही है, साधन भी निर्दोष होना चाहिये। अब कहिये गौतमका चाहे जो अपराध रहा हो उनकी पत्नी अहल्याके साथ इन्द्रने जो कुछ किया वह क्या क्षम्य था ? यह क्या वही इन्द्र हैं जिनकी महिमा वेदोंमें गायी गयी है. इन्द्रश्रेष्ठा देवाः, इन्द्रः सर्वा देवताः, इत्यादि ? और जालन्धर दैत्यको हरानेके लिए उसकी पत्नी वृन्दाके सतीत्वको नष्ट करना क्या विष्णुको शोभा देता है ? क्या ऐसा करनेके बाद भी विष्णु पूजा करनेके योग्य रह गये ?

ऐसी कथाएँ हमको लज्जित करती हैं, हमारे चरित्रको गिराती हैं, हमारे देवगणको अपमानित कराती हैं। किन्हीं दुराचारी मूर्खोंने ऐसी कहानियोंको गढ़कर मानस व्यभिचार द्वारा अपनी कुवासनाओंकी तृप्ति की है और इनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ भगवान् व्यासका नाम जोड़कर उनके शुभ्र यशको कलङ्कित किया है। आप इन सब चीजोंका आँख बन्द करके समर्थन करके पापके भागी बनते हैं। सच तो यह है कि आप पुराणोंको पढ़ते ही नहीं, बिना पढ़े ही उनके लिए लट्ठ लेकर खड़े हो जाते हैं।

वेदमें हनुमान

वेदों की छीछालेदर करके श्रद्धालु समाजको किस प्रकार धोखा दिया जाता है उसका एक उदाहरण पर्याप्त है।

पं० हीरावल्लभ शास्त्री वेदमें हनुमानकी पूजाका उल्लेख पाते हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने जो कुछ लिखा है वह अद्भुत है। यदि इसी प्रकार खोज होता गया तो थोड़े दिनोंमें वेदोंमें फातिमा, विभीषण, बालेमियाँ सब मिल जायँगे। 'उदासीनवदासीनः' देखकर कुछ लोग भगवद्गीतामें उदासी सम्प्रदाय-के अस्तित्वका प्रमाण पाते हैं, फिर महावीर शब्दसे हनुमानजी कैसे न माने जायँ ?

महावीरका उल्लेख प्रवर्ग्यके सम्बन्धमें आता है। श्री हीरावल्लभजीने शतपथ ब्राह्मणका हवाला दिया है। यजुर्वेदके ३६ वेंसे लेकर ३९ वें अध्यायमें यही प्रकरण है। मेरी 'आर्योंका आदि देश' नामक पुस्तकके १५ वें अध्यायमें प्रवर्ग्यका ही विषय है। वहाँ ऐतरेय ब्राह्मणका भी प्रसङ्गगत उल्लेख है।

थोड़ेमें, बात यह है कि सोमयज्ञके पहिले प्रवर्ग्य होता था। इसमें यज्ञवेदी-पर मिट्टीका एक गोल वृत्त बनाया जाता था। यह मिट्टी खर (गधे) पर लादकर लायी जाती थी, मिट्टीसे बने वृत्तको भी खर कहते थे। इस वृत्तपर एक घड़ा रखा जाता था। यह घड़ा विशेष प्रकारकी मिट्टीका और विशेष नापका बनाया जाता था, विशेष प्रकारके फूलोंसे मलकर चिकना किया जाता था और फिर विशेष प्रकारसे पकाया जाता था। बादको इसमें थोड़ेसे गऊके दूधके साथ ऐसी बकरीका दूध मिलाया जाता था जिसका बच्चा मर गया हो। दूधका अधिकतर अंश आहवनीय अग्निमें डाल दिया जाता था, शेषको होता पी जाता था। प्रत्येक क्रियाके लिए मन्त्र मिलते हैं। हमारा विषय प्रवर्ग्य यज्ञ नहीं है। इतना ही जानना चाहिये कि उस घड़ेको घर्म या महावीर कहते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी श्रौत सूत्रकार, किसी ब्राह्मणके ऋषि, किसी भाष्यकारको घर्ममें हनुमानकी गन्ध नहीं मिली। विष्णु आदि सभी देव अपने वैदिक नामोंसे पुकारे जाते हैं परन्तु हनुमानजीकी नामावलीमें कहीं भी घर्म शव्द न मिलेगा। यदि कोई जिज्ञासु महावीरके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहे तो वह कात्यायन श्रौत्र सूत्रके छब्बीसवें अध्यायकी प्रथम कण्डिका देख जाय। वहां स्पष्ट लिखा है कि सूअर की खोदी मिट्टीका प्रयोग होता था और घोड़ेकी लीदकी आंचसे घड़ेको धूपित करते थे। अब इस घड़े और अञ्जनिपुत्र वज्राङ्गवली हनुमानमें तादात्म्य स्थापित करना हमारे इन आधुनिक पंडितोंका ही काम है। यह वेदके नाम पर जनताकी वञ्चना है।

वेदमें गणेशजी

मैंने जो यह कह दिया कि गणेशजी अवैदिक हैं इससे कुछ लोग रुष्ट हो गये। मुझे आपके रुष्ट होनेसे दुःख होता है पर क्या करूँ, सत्य आपसे भी बड़ा है। मैंने यह तो कहा नहीं कि वेदोंमें गणपति शव्द नहीं आया है। शव्द तो आया है पर किसके लिए? ऋग्वेद (२–२३–१) में जो गणपति शब्द आया है उसको सायण ब्रह्मणस्पतिवाचक बतलाते हैं और सायणसे बढ़कर श्रुति स्वयं ऐसा कहती है। ऐतरेय ब्राह्मणके चतुर्थाध्यायके चतुर्थ खण्डमें कहा है—गणानान्त्वा गणपतिं हवामह इति ब्राह्मणस्पत्यम्—गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे मन्त्र ब्रह्मणस्पति-सम्बन्धी है।

यजुर्वेदका 'गणानांत्वा' मन्त्र अश्वमेधाध्यायमें आया है और भाष्यकार तथा श्रौत्र सूत्रकार उसे 'अश्वदैवत्यम्'—अश्वदेवतापरक—मानते हैं। श्रीदीनानाथ शास्त्री मुझसे पूछते हैं कि वहाँ मरे घोड़ेसे भला कोई क्या प्रार्थना करेगा, वह क्या दे सकता है? निश्चय ही अश्वरूपसे गणेशजीकी पूजा की जा रही है। मरा या जीता घोड़ा कुछ दे सकता हो या न दे सकता हो पर अन्यथा असिद्ध गणेशजीकी कल्पना क्यों की जाय? आप ऐसा क्यों नहीं मानते कि ऋग्वेदमें जिन ब्रह्मणस्पतिको गणपति कह आये हैं वही यहाँ भी अभिष्टुत हैं? यहाँ गणेशजीका कामभी क्या है? हीरावल्लभजी कहते हैं कि गणेशजी बुद्धिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिष्ठाता हैं और यहाँ यजमानकी पत्नी गर्भधारण करनेकी बात कह रही है, जो गणेशजीका क्षेत्र नहीं है।

श्रौत ग्रंथोंमें केवल एक स्थल ऐसा है जहाँपर गणेशकी ओर सङ्केत मिलता है। कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यकके दसवें प्रपाठकके पहिले अनुवाक्में यह मन्त्र आया है—

तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्॥

यह मन्त्र प्रसिद्ध रुद्रगायत्रीका रूपान्तर है; उसके महादेवायकी जगह वक्रतुण्डाय और रुद्रः की जगह दन्तिः बदल दिया गया है। जो कुछ हो, इसमें स्पष्ट ही गणेशका जिक्र है क्योंकि वक्रतुण्ड और दन्ति (या दन्ती) उनके ही नाम हैं।

इसके सम्बन्धमें दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह कि वेदोंके संहिता भागमें सहस्रों मन्त्र हैं। अकेले ऋग्वेद में लगभग ११,००० हैं। परन्तु दन्ति या वक्रतुण्डके नामपर एक भी नहीं है। दूसरे, आरण्यकके जिस भागमें यह मन्त्र आया है उसमें जो मन्त्र हैं वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। ब्राह्मणोंमें वैसे ही मन्त्र होने चाहियें जैसे संहिता में हों, क्योंकि ब्राह्मणमें संहिता की ही व्याख्या-सी होती है। सायणने इनको खिल मन्त्र गिना है। इस जगह एक मन्त्र नन्दीके लिए, एक गरुड़के लिए, एक दुर्गा (या दुर्गी) के लिए आया है। इन बातोंको देखकर विद्वज्जनको कहना पड़ा है 'इत ऊर्ध्वं तेषु तेषु देशेषु श्रुतिपाठा अत्यन्त विलक्षणाः'—इसके बाद तत्तत् स्थानमें अत्यन्त विलक्षण श्रुतिपाठ मिलते हैं। इन बातोंसे यह अनुमान होता है कि यह अंश प्रक्षिप्त है। पुराने विद्वान् निष्पक्ष विचारक थे, उनको आरण्यकमें गरुड़, दुर्गी, नन्दी, और दन्तीके मन्त्र खटके, उन्होंने अपनी शङ्का स्पष्ट लिख दी; आप लकीर पीटते हैं, इसलिए आपके लिए सब कुछ प्रमाण है।

(४)

अब मैं इस प्रत्यालोचनाको समाप्त करता हूँ। विवादसे कोई लाभ नहीं है। पुरानी पोथियोंके अवतरण देकर अपनी विद्वत्ता दिखलायी जा सकती है पर विद्वत्ताके प्रदर्शनसे घरमें लगी आग नहीं बुझती। मैं ब्राह्मणोंसे फिर सानुनय अभ्यर्थना करता हूँ कि आप अपने स्वरूपको पहिचानिये, अपने कर्तव्यपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि डालिये, अपने घरको सँभालिये। मैंने यदि कहीं कटु भाषाका प्रयोग किया हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ परन्तु मेरी कटुतासे रुष्ट होकर आप अपने कर्तव्यका, अपने धर्मका, परित्याग नहीं कर सकते। धर्मपर सङ्कट पड़ता देख-कर आपके पूर्वजोंने नये धर्मग्रन्थोंकी रचना की; धर्मको सङ्कटमें देखकर शङ्कराचार्य जैसे महापुरुष समाधिसुखका परित्याग करके कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए; धर्मके ह्रासको न सहकर ही तपोधन मुनिजन वेणको प्राणदण्ड देनेपर उद्यत हुए; धर्मके लिए दधीचिने अपने प्राण दे दिये। मैं चाहता हूँ कि आप कर्म-पथपर उतरें, समयको पहचानें। जब नाव भँवरमें पड़ जाती है, आँधीके थपेड़े उसको आपद्ग्रस्त कर देते हैं तो चतुर नाविक ऐसी वस्तुओंको जो भार बढ़ानेवाली होती हैं पानीमें फेंक देता है। हल्की नावको बचाना सुगम होता है। किनारेपर लगकर ऊपरी सामानका पुनः सङ्ग्रह किया जा सकता है। पुरानी-की जगह उनसे अच्छी नयी चीजें ली जा सकती हैं। जब घरमें आग लगती है तो लोग थोड़ी-सी बहुमूल्य वस्तुओंको लेकर बाहर निकल आते हैं, जीवन रहा तो दूसरी चीजें फिर आ जायँगी। आप भी ऐसा ही करें। आज जब धर्म्मपर चतुर्दिक्से आक्रमण हो रहा है तो सब कुछ नहीं बचाया जा सकता। सब बचानेके उद्योगमें सब जायगा। आप रत्न और कूड़ेमें विवेक नहीं करते, यह विपत्ति है। कूड़ेको, गौण चीजोंको, गौण आचार-व्यवहारको, गौण उपा-सनाओंको छोड़िये; मूलको पकड़िये। यदि आपके वेद रह गये तो सब कुछ फिर आ जायगा। समयको देखकर वेदकी नींवपर नये धर्मशास्त्रकी, नये आचारशास्त्रकी, नये न्यायकी, सृष्टि कीजिये। यह रचना नयी होगी पर इसकी जड़ प्राचीनसे प्राचीन, सनातन, होगी। शाखाओंको काट दीजिये। जड़ रहेगी तो नयी शाखाएँ फिर निकल आयेंगी। युगप्रवर्तक बनिये। समाजके अनार्य-जुष्ट, अस्वर्ग्य, अकीर्तिकर क्लैब्यको दूर करके उसमें आर्योचित स्वाव-लम्बन, धर्मानुप्राणित स्फूर्ति, भरिये। आपके कन्धोंपर बहुत बड़ा दायित्व है। उसका बोझ आप दूसरोंपर नहीं डाल सकते। मैं फिर कहता हूँ, नम्रतासे परन्तु दृढ़तासे कहता हूँ, आप सावधान हों, मोह-निद्रासे उठें। आपके जागनेसे हिन्दू समाजका, भारतवर्षका, समस्त विश्वका, कल्याण होगा।

९६६

रुद्रो वो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi